वर्ष : १३

अंक : १२१

जनवरी २००३

पौष मास

विक्रम सं. २०५९

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी
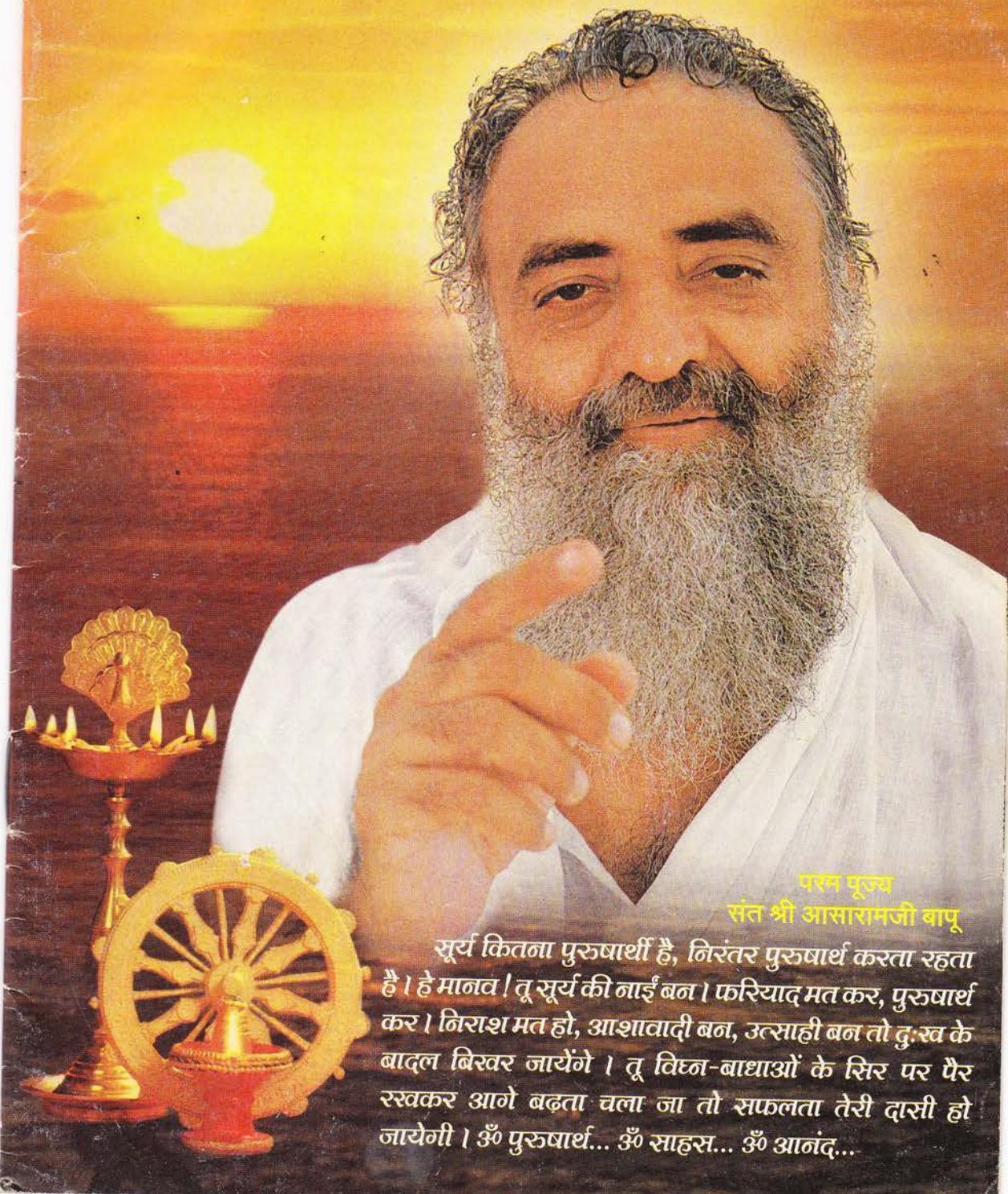
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

सूर्य कितना पुरुषार्थी है, निरंतर पुरुषार्थ करता रहता है। हे मानव! तू सूर्य की नाईं बन। फरियाद मत कर, पुरुषार्थ कर। निराश मत हो, आशावादी बन, उत्साही बन तो दुःख के बादल बिखर जायेंगे। तू विघ्न-बाधाओं के सिर पर पैर रखकर आगे बढ़ता चला जा तो सफलता तेरी दासी हो जायेगी। ॐ पुरुषार्थ... ॐ साहस... ॐ आनंद...
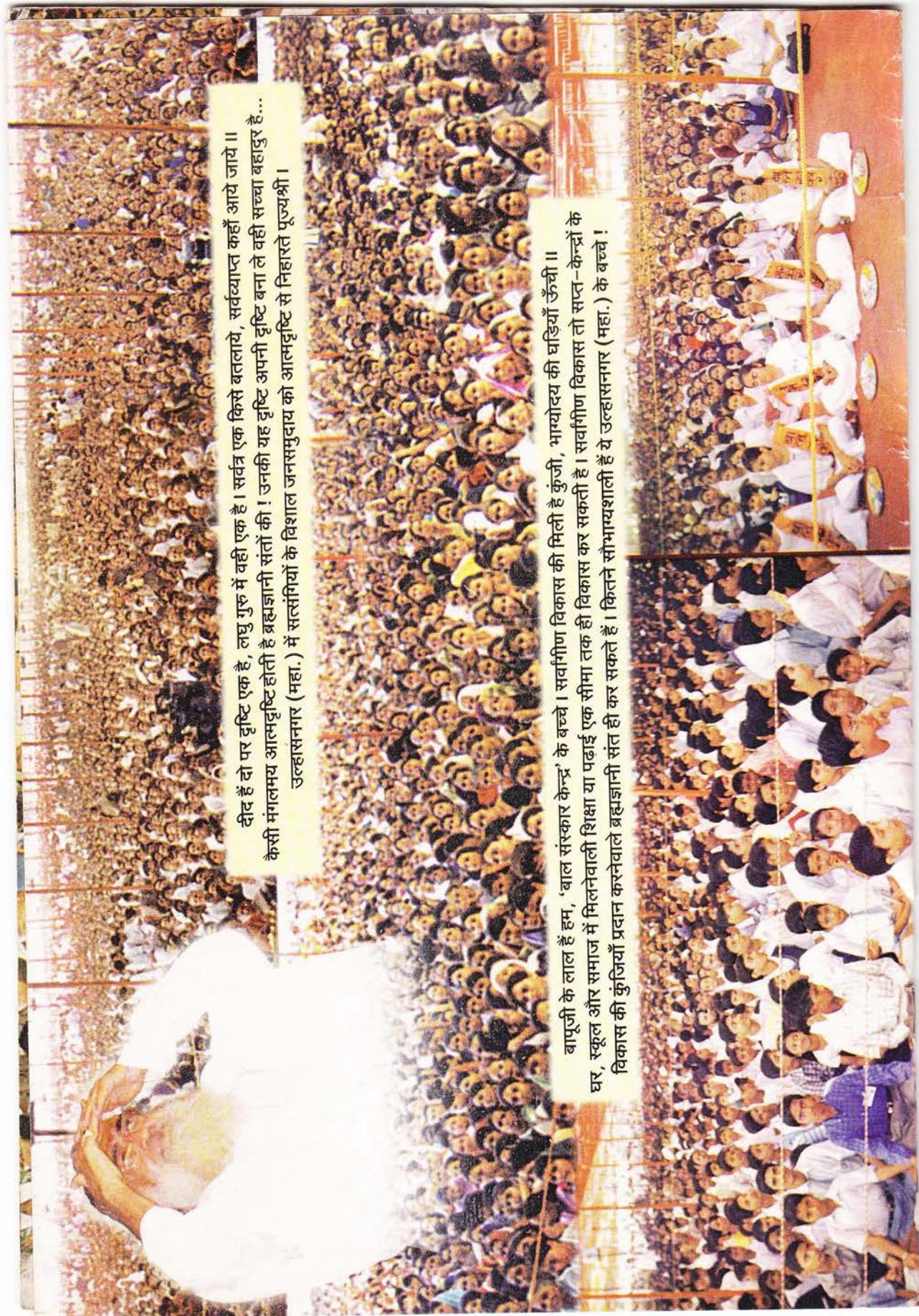
दीद हैं दो पर दृष्टि एक है, लघु गुरु में वही एक है। सर्वत्र एक किसे बतलाये, सर्वव्याप्त कहाँ आये जाये ॥
कैसी मंगलमय आत्मदृष्टि होती है ब्रह्मज्ञानी संतों की ! उनकी यह दृष्टि अपनी दृष्टि बना ले वही सच्चा बहादुर है...
उल्हासनगर (महा.) में सत्संगियों के विशाल जनसमुदाय को आत्मदृष्टि से निहारते पूज्यश्री।

बापूजी के लाल हैं हम, 'बाल संस्कार केन्द्र' के बच्चे। सर्वांगीण विकास की मिली है कुंजी, भाग्योदय की घड़ियाँ ऊँची ॥
घर, स्कूल और समाज में मिलनेवाली शिक्षा या पढ़ाई एक सीमा तक ही विकास कर सकती है। सर्वांगीण विकास तो सप्त-केन्द्रों के विकास की कुंजियाँ प्रदान करनेवाले ब्रह्मज्ञानी संत ही कर सकते हैं। कितने सौभाग्यशाली हैं ये उल्हासनगर (महा.) के बच्चे !

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १३
अंक : १२१
९ जनवरी २००३
पौष मास, विक्रम संवत् २०५९
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय 'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा (गांधीनगर), साबरमती, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : पारिजात प्रिन्टरी, राणीप और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०

संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०

'संकीर्तन' सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

चित्त का फुरना

चित्त के फुरने-फुरने में
क्या अपना हाल बनाया है ?
अपने ही संकल्पों से
यह मायाजाल रचाया है ॥
किया भरोसा जिन पर तूने
उनसे धोखा खाया है ।
सुख की चाह में भटका लेकिन
दुःख ही तूने पाया है ॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह ने
तुझको यूँ भरमाया है ।
क्यों तू भूला हरिभजन के लिए
मिली यह अनमोल काया है ॥
सतो-रजो-तमो गुणों में
फिरता चला तू आया है ।
तीनों से है पार निकलना
याद तुझे नहीं आया है ॥
ज्यों सपने में बनाता सृष्टि
त्यों जाग्रत में बनायी है ।
अज्ञान निद्रा में सोये थे
गुरुवर ने हमें जगाया है ॥
आँखें खुली तो जाना मैंने
यह सब झूठी माया है ।
व्यर्थ ही रोता-हँसता था
ना कुछ खोया-पाया है ॥
होता चित्त अचित्त जब बंदे
आत्मतत्त्व तू पायेगा ।
बन जा साक्षी तू 'फुरने' का
सद्गुरु ने समझाया है ॥
कर जप-ध्यान-प्राणायाम और
गिनती श्वासोच्छ्वास की ।
चित्त का फुरना रुक जायेगा
सद्गुरु ने सिखलाया है ॥
देख के करुणा गुरुवर की
मेरी आँखें भर-भर आतीं ।
जीव को ब्रह्म बनाने का
अद्भुत ज्ञान बताया है ॥

- विकास खेमका

*

कहाँ से लाऊँ...

पावन चरण पखारे वो कर कहाँ से लाऊँ ?
गुरुवर की गरिमा गाये वो स्वर कहाँ से लाऊँ ?
आराधना नहीं की न मन लगा भजन में ।
अज्ञानता के बादल छाये रहे गगन में ॥
भरूँ ज्ञान की उड़ानें वो पर कहाँ से लाऊँ ? गुरुवर की...
कुछ खुद ही मिट गये हम कुछ संगति ने मारा ।
अब आये शरण तुम्हारी हे नाथ दो सहारा ॥
जिसमें हो तेरी पूजा वो घर कहाँ से लाऊँ ? गुरुवर की...
सब कुछ किया है लेकिन मुख धर्म से ही मोड़ा ।
सब सुख के साथियों ने अवसर पे साथ छोड़ा ॥
चरणों में जो झुके नित वो सर कहाँ से लाऊँ ? गुरुवर की...

- बृजेश शरण सैनी

*

बात ऐसे बने...

शरीर तो है हमारा प्रति पल मर रहा ।
यह मन हमारा मर जाय तो फिर बात बने ॥
जीवन भर लोगों से पहचान करते रहते हैं ।
निज से हो जाय पहचान तो फिर बात बने ॥
धन-दौलत जोड़ने में बीत रहा है जीवन ।
आत्म धन प्राप्त हो जाय तो फिर बात बने ॥
'दर-दर पे सजदा करने से कुछ नहीं मिलता ।
हो जाय सद्गुरु की कृपा तो फिर बात बने ॥

- अशोक भाटिया

शास्त्र श्रवण से, संत संग से, प्रज्ञा निर्मल होती ।
सो ही प्रज्ञा मैल चित्त के, मूल सहित है धोती ॥
जगत विषय की आत्म विषय की, सब शंकायें खोती ।
आत्म तत्त्व दिखला है देती, यथा हाथ में मोती ॥

स्वतःसिद्ध-स्वतःनिवृत्त तत्त्व

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

कबीरजी ने कहा है :

हद टुपे सो औलिया बेहद टुपे सो पीर ।
हद बेहद मैदान में सोया दास कबीर ॥

काशी में गंगा के तट पर कबीरजी के चरणों में एक जिज्ञासु साधक आ गया । उसने कहा :

''महाराज ! ज्ञान का तो कोई अंत नहीं है । ज्ञान तो अनहद है । अनहद की कोई हद नहीं बता पाता है ।''

कबीरजी ने कहा : ''भाई ! विद्वान भले अनहद की हद न बता पाये लेकिन अनुभवी पुरुष अनहद की हद बताने में देर भी नहीं करते हैं ।''

पढ़ने की हद समझ है, समझ की हद ज्ञान ।
ज्ञान की हद हरिनाम है, यह सिद्धांत उर आन ॥

''महाराज ! हम समझे नहीं । इस ज्ञान के रहस्य को हम समझ पायें ऐसी कृपा कीजिये ।''

पढ़ने की हद समझ है... तुम खूब पढ़े तो उसकी सीमा क्या है कि जो पढ़ा है वह समझ में आ जाय । **समझ की हद ज्ञान ।...** समझ की हद क्या है कि जहाँ से समझ आती है, उसका ज्ञान हो जाय ।

ज्ञान की हद हरिनाम है, यह सिद्धांत उर आन ॥... ज्ञान हो जाय कि अनित्य क्या है और नित्य क्या है ? जो नित्य है वह सदा प्राप्त है, स्वतः प्राप्त है, सबको प्राप्त है । जो अनित्य है उसकी स्वतःनिवृत्ति है, सदा निवृत्ति है और सबके यहाँ से निवृत्ति है । अनित्य निवृत्त हो रहा है और नित्य सदा प्राप्त है । इस नित्य में, हरिनाम में, हरि की निष्ठा में लग जायें तो हो गया सब काम ! यह बहुत ऊँची बात है ।

एक है स्वतःसिद्ध तत्त्व, दूसरा है स्वतःनिवृत्त तत्त्व । जो हमारा वास्तविक स्वरूप है, आत्मा-परमात्मा, वह स्वतःसिद्ध है और जो प्रकृति का है वह स्वतःनिवृत्त है ।

फलाना है कि नहीं इसमें संदेह हो सकता है, किंतु 'मैं हूँ कि नहीं ?' ऐसा संदेह कभी नहीं होता । 'मैं हूँ' - जहाँ से उठता है वह परमात्मा है । 'मैं मनुष्य हूँ' - यह शरीर को 'मैं' मानकर कहा गया है और शरीर प्रकृति का है । 'यह पृथ्वी है ।' पृथ्वी प्रकृति है किंतु उसमें जो 'है' पना है, वह स्वतःसिद्ध तत्त्व है ।

अस्तित्व सदा रहता है और प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है । जैसे - बालक जन्मा, २ वर्ष तक उसे शिशु कहते हैं, ५ वर्ष तक वह कुमार है, १५ वर्ष तक वह किशोर है, ३० वर्ष तक वह युवा माना जाता है, ३० से ५० वर्ष तक प्रौढ़ माना जाता है, ५० के बाद वृद्ध माना जाता है; तो यह शिशु है, कुमार है, युवा है... 'है' पना रहता है । मर जाता है तो मुर्दा है, जला दिया गया तो अस्थि और राख है । राख और हड्डियों को कहीं गाड़ दिया गया तो खाद है । उसमें जो अस्तित्व है वह चेतन परमात्मा का है और परिवर्तन है वह प्रकृति का है ।

आप कितना भी सँभालकर रखें, प्रकृति में सब परिवर्तित होता जा रहा है । मकान, दुकान, शरीर, अवस्था - किसीको भी सँभालकर रखो, सब बदल जाता है । जो स्वतःनिवृत्त है, परिवर्तित होता रहता है उसमें सत्यबुद्धि है और जो सदा है, स्वतःप्राप्त है उसमें प्रीति अथवा सजगता नहीं है, इसीलिए मनुष्य दुःखी, परेशान और चिंतित रहता है ।

जिसका परिवर्तन होता है वह निवृत्त भी हो रहा है । 'मैं यह कैसे छोड़ूँ ? मेरे से यह छूटता नहीं है ।' अरे, तुम छोड़ो नहीं, सब छूटता जा रहा है । जो नहीं छूटता है उसको याद नहीं करते हैं और जो छूटनेवाला है उसे पकड़ने की कोशिश करते हैं इसीलिए चिंतित और परेशान होते हैं । जो कभी नहीं छूटता है वह आनंदस्वरूप है, प्रेमस्वरूप है,

ज्ञानस्वरूप है, शांतस्वरूप है, स्वतःसिद्ध है - इस प्रकार के ज्ञान में निष्ठा हो जाय तो काम बन जाय।

'है' स्वतःसिद्ध है । उसमें टिक जायें । 'है' सदा था, सदा है और सदा रहेगा । उसमें हम टिकते नहीं और जो संसार सहज निवृत्त हो रहा है उसकी सत्यबुद्धि मिटाते नहीं हैं । 'अरे, यह चला न जाय... कहीं ऐसा न हो जाय...' इसीमें जीवन पूरा कर देते हैं ।

'सुखमनी साहिब' में लिखा है :

जो ठाकुरु सद सदा हजूरे ॥
ता कउ अंधा जानत दूरे ॥
सो प्रभ दूर नहीं, सो प्रभ तू है ॥

एक सेठ को हुआ कि कैसे भी करके घर में बाबाजी के चरण डलवा दूँ । उसने बाबाजी को रिझाया और अपने घर ले गया ।

सेठ का मकान देखकर बाबाजी ने कहा : ''इतना बड़ा मकान, जमीन-जायदाद, धन-सम्पत्ति है तो कोई चौकीदार वगैरह रखा है कि नहीं ?''

''बाबाजी ! ये सब चौकीदार रखे हैं। चौकीदार न हों तो इतनी सारी सम्पत्ति की रखवाली कौन करेगा ? चौकीदार के न होने पर तो चोर दिन-दहाड़े चोरी करके ले जायेंगे।''

''यह बाहर का धन तो छूट जायेगा। उसको सँभालने के लिए चौकीदार रखे हैं और जो सदा रहता है उस धन की तरफ लुटेरे लगे हैं । उसके लिए कोई चौकीदार नहीं रखा है क्या ?''

''बाबाजी ! मैं समझा नहीं...''

''जो तुम्हारी शांति, सज्जनता, तुम्हारा स्नेह, रस चुराकर ले जाते हैं, तुम्हारा आनंद-माधुर्य चुराकर ले जाते हैं उनको भगाने के लिए तुमने हरिनाम का चौकीदार नहीं रखा है क्या ?

भगवन्नाम-स्मरण नहीं होगा तो इन सद्गुणों को चुराकर ले जायेंगे - अहंकार और अज्ञान। इसीलिए सतत मानसिक चौकीदारी अर्थात् भगवन्नाम का स्मरण करें ताकि तुम्हारे सद्गुणों की सुरक्षा होती रहे।''

जैसे धन-धान्य, माल-मिल्कियत की रक्षा के लिए चौकीदार रखते हैं, ऐसे ही इन सद्गुणों को हलके विचार कहीं संसार की तरफ घसीट न ले जायें, इसलिए अंदर से सजग रहना चाहिए ।

क्रोध आये तो उस समय देखें कि क्रोध आया है । उस समय सजग रहें । **आपको क्रोध करना पड़े तो कर लें, किंतु उस समय देखते भी रहें कि 'यह स्वतःनिवृत्त होनेवाला है और मैं इसे देखनेवाला स्वतःसिद्ध हूँ ।'** ऐसा करके क्रोध करेंगे तो क्रोध से अनर्थ नहीं होगा । जिस पर क्रोध करेंगे उसका भी हित होगा और आपका भी हित होगा ।

यदि आप स्वतःसिद्ध तत्त्व में नहीं टिके हैं तो क्रोध आने पर वह आपको भी तपन देगा और सामनेवाले की भी हानि करेगा । इसी प्रकार दुःख, चिंता परेशानी आदि को भी देखें ।

सुख आता है । आता है तो जाता नहीं है क्या ? जबसे आता है तबसे जाना शुरू हो जाता है । इसी प्रकार दुःख आता है, वह भी जाता है । किसीका पति मर जाता है उस समय जो दुःख होता है, वह दुःख दो घंटे के बाद नहीं रहता । दो महीने के बाद तो बेटे की शादी में वह दुल्हे की माँ बनकर बधाइयाँ लेती-देती है, मिठाई लेती-देती है...

सुख टिकता नहीं है, गुजरता है । दुःख टिकता नहीं है, गुजरता है । चिंता भी जीवन में से गुजरती है । हम इन्हें देखनेवाले हैं और ये सब आने-जानेवाले हैं ।

सुख-दुःख सतत निवृत्त हो रहे हैं । सुख भी निवृत्त हो रहा है, दुःख भी निवृत्त हो रहा है । पुण्य का फल भी निवृत्त हो रहा है, पाप का फल भी निवृत्त हो रहा है । पुण्य और पाप प्रकृति में हैं, जीवात्मा के शुद्ध स्वरूप में नहीं ।

जीवात्मा परमात्मा से भिन्न नहीं है । ज्ञान हो जाता है तब जीव और ब्रह्म की एकता हो जाती है, यह समझाने के लिए कहा जाता है । जैसे पति-पत्नी गले लगते हैं या दूध और पानी एक हो जाता है, वैसे जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं ऐसा नहीं है । हकीकत में जीव का जो अलग दिखना था, अलग होने की जो मान्यता थी वह मिट जाती है ।

'तरंग और सागर एक हो गये...' तो एक क्या

हुए ? जब तरंग थी तब भी वह सागर में ही थी और सागर का ही स्वरूप थी । 'तरंग और सागर का पानी एक हो गया...' भैया ! समुद्र का पानी और तरंग का पानी एक हो गया यह तुम्हारी नजरों में है, बाकी समुद्र और तरंग दोनों एक ही हैं । ऐसे ही जीवात्मा और परमात्मा एक ही थे, एक ही हैं और एक ही रहेंगे । किंतु शरीर को 'मैं' मानकर और बदलनेवाली चीजों को 'मेरा' मानकर जीव अपने परमात्मस्वरूप को भूल बैठा है, इसीलिए जीवात्मा है नहीं तो...

वो थे न मुझसे दूर, न मैं उनसे दूर था।
आता न था नजर, तो नजर का कसूर था ॥

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं कि 'फूल-पत्ते तोड़ने में परिश्रम है । अपने परमात्मदेव को जानने में क्या परिश्रम है ?' उपदेशमात्र से मान तो लेते हैं कि परमात्मप्राप्ति ही सार है, सुनते-सुनते, विचार करते-करते, जगत की थप्पड़ें खाते-खाते लगता है कि तत्त्वज्ञान के बिना, परमात्मज्ञान के बिना जीवन व्यर्थ है किंतु उसमें टिक नहीं पाते । क्योंकि टिकने की सात्त्विक बुद्धि, दृढ़ निश्चय, सजगता और तड़प नहीं है । आहार-विहार पवित्र हो, बुद्धि सात्त्विक हो, सजगता हो और परमात्मप्राप्ति की तीव्र तड़प हो तो टिकना कोई कठिन नहीं है ।

सत्कर्म भी निवृत्ति के लिए है । सत्कर्म करके फायदा लेने की वासना होगी तो प्रवृत्ति बढ़ेगी । सत्कर्म करके जो स्वतःनिवृत्त है उस निवृत्ति में टिकने का यत्न करें तो प्रवृत्ति करते हुए भी निवृत्ति हो जायेगी और निवृत्त हो गये तब भी निवृत्ति हो जायेगी । कितने भी कर्म करें, आखिर में तो निवृत्ति आयेगी ही और निवृत्ति के लिए करेंगे तब भी निवृत्ति आयेगी । पंचदशीकार ने लिखा है :

मायामेघो जगन्नीरं वर्षत्वेष यथा तथा।
चिदाकाशस्य नो हानिर्न वा लाभ इति स्थितिः ॥

'मायारूपी मेघ जगतरूपी जल की वर्षा जैसे-वैसे करे, न इससे चिदाकाश का कुछ लाभ है न हानी, यह सिद्धांत है ।' **(पंचदशी : ८.७५)**

फलानी जगह बाढ़ आ गयी... इतने गाँव डूब गये... लेकिन आकाश को कौन डुबा सका ? ऐसे ही १२ सूरज तप जायें... मूसलाधार वर्षा होने लगे... पृथ्वी पर हाहाकार मच जाय... महाप्रलय हो जाय... ऐसे महाप्रलय में भी जो नहीं मिटता, वह स्वतःसिद्ध तत्त्व हम हैं ।

किआ मागउ किछु थिरु न रहाई ।
देखत नैन चलिओ जगु जाई ॥

आँखों के देखते-देखते जगत बीत रहा है... स्वतःनिवृत्त हो रहा है... उसको देखनेवाला स्वतःसिद्ध परमात्मा ज्यों-का-त्यों है और वही अपना-आपा है । प्रकृति स्वतःनिवृत्त है और परमात्मा स्वतःसिद्ध है । आपका शरीर, मन, बुद्धि प्रकृति है और उसको देखनेवाले परमात्मा आप हो । हिम्मत करके खुल्ला बोल दें तो आप हो परमात्मा और शरीर है आपकी माया ।

''महाराज ! हम परमात्मा हैं ? परमात्मा ने तो दुनिया बना दी और हम एक चिड़िया भी नहीं बना सकते ।''

''परमात्मा ने दुनिया बनायी, यह तुमने देखा है क्या ?''

''नहीं, सुना है ।''

''कहाँ से सुना है ?''

''शास्त्रों से ।''

''तो यह बात भी शास्त्र कहता है कि **ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।** अर्थात् इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है ।''

''महाराज ! आप संत हैं, संतों में बड़ी शक्ति होती है । हमको कोई बोल दे कि 'तुम संत हो' तो हम कैसे मान लेंगे ?''

संतत्व होता है मन और बुद्धि की विशेषता से । यह विशेषता तो है प्रकृति में । बाकी संत जिससे संत हैं, उसीसे आप हो । वे इस बात को जानते हैं इसलिए संत हैं, बड़े हैं । आपने केवल सुना है, अभी जाना नहीं है इसलिए आप अपने को छोटा मानते हो । इस स्वतःसिद्ध तत्त्व में टिकना ही ईश्वरत्व में टिकना है, संतत्व में टिकना है, दुःखों से पार परमेश्वर में टिकना है ।

यह बात बहुत ऊँची है, बहुत सरल है, बहुत सूक्ष्म है । इससे ऊँची, सरल और बड़ी कोई बात

है भी नहीं । इसे सुननेमात्र से हजारों कपिला गौ दान करने से भी अधिक फल होता है । इसका मनन और निदिध्यासन करके इसमें टिक जायें तो आपका दर्शन करनेवाला भी आनंद, शांति, माधुर्य का अधिकारी हो जायेगा...

आप जो भी काम करते हैं, उसमें तीन बातें होनी चाहिए : (१) वह आपकी क्षमता के अनुरूप होना चाहिए । (२) आपकी रुचि के अनुरूप होना चाहिए । (३) आपके विवेक के अनुरूप होना चाहिए । - ये तीन बातें होंगी तो आपको उस काम में सफलता मिलेगी । आपकी रुचि नहीं है अथवा आपका विवेक मना करता है या आपमें उसे करने का बल नहीं है फिर भी करोगे तो उसमें थकान लगेगी, गड़बड़ी हो जायेगी ।

''महाराज ! रुचि तो है, विवेक भी 'हाँ' बोलता है किंतु हमारा बल नहीं है तो क्या करें ?''

''आराम करो ।''

''कैसे आराम करें महाराज ! सो जायें ?''

''ना ।''

''बैठे रहें ?''

''ना । आराम करो अर्थात् राम में विश्रांति पाओ । विश्रांति पाने से सामर्थ्य आ जायेगा । जो स्वतःसिद्ध तत्त्व है, उसमें सामर्थ्य है ।

बोलते-बोलते मानो, हम थक जायें और थोड़ी देर नहीं बोलेंगे, विश्राम करेंगे तो बोलने की शक्ति आ जायेगी । काम करते-करते थक जायें, फिर काम नहीं करेंगे, विश्राम करेंगे तो काम करने की शक्ति आ जायेगी । ऐसे ही आप स्वतःसिद्ध तत्त्व में थोड़ा शांत होते जाओ, विश्राम करते जाओ । इससे आपमें सामर्थ्य आ जायेगा । आप कुछ नहीं कर सकते तो विश्राम तो कर सकते हैं । जब विवेक मना करता है अथवा सामर्थ्य नहीं है या रुचि नहीं है तो कुछ न करो ।''

''महाराज ! रुचि तो नहीं है दुकान पर जाने की लेकिन जाना पड़ता है क्या करें ?''

''करना पड़ता है उसके पहले परमात्मा में विश्राम करो तो करने का स्वाद आयेगा । परमात्मा में विश्राम करने की युक्ति पता नहीं है इसीलिए मजदूर की नाईं जबरदस्ती करते हैं तो फिर रस नहीं आता है । रस नहीं आता है इसलिए सुरा-सुन्दरी चाहिए, पानमसाला-गुटखा चाहिए, कुछ-न-कुछ विनोद (व्यर्थ का हँसी-मजाक) चाहिए, कोई-न-कोई आश्रय चाहिए । फिर बाहर के आश्रय खोजते रहते हैं, तीन तनावों (शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक) से तनते रहते हैं । इससे तो परमात्मा का आश्रय ले लो, विश्रांति पा लो । जो स्वतःप्राप्त है उसमें विश्रांति... ॐ शांति... ॐ शांति... मन इधर-उधर जाने लगे तो फिर से करो हरि ॐ शांति... हरि ॐ शांति... विश्रांति से सामर्थ्य आयेगा ।

''अरे, मेरा बेटा चला गया... हाय-रे-हाय...''

'हाय-रे-हाय...' करने से न बेटा जिंदा हुआ न वापस लौटा... अपने को अशांति हुई, ममता बढ़ी । वह चला गया तो उसका क्रियाकर्म आदि जो विधि है, कर लो बाकी 'हाय-हाय' करने से क्या हो जायेगा ? उसके पीछे हम क्यों मरें और हम मरना चाहें तो भी नहीं मर सकते । शरीर मरेगा, हम क्यों मरेंगे ? हम तो स्वतःसिद्ध हैं ।

जो निवृत्त हो रहा है उसे निवृत्त होने दो । उससे निवृत्त हो गये तो ज्यादा परिश्रम नहीं रहेगा । बुद्धि शांत रहेगी, उसे आराम मिलेगा । बुद्धि शांत रहेगी तो बलवान होगी । फिर वह मन के कहने में नहीं चलेगी वरन् मन को अपने कहने में चलायेगी । इससे मन इन्द्रियों के कहने में नहीं चलेगा, जिससे इन्द्रियों को भी विश्राम मिलेगा ।

इन्द्रियाँ भी स्वस्थ हों, मन भी स्वस्थ हो और बुद्धि भी स्वस्थ हो तो 'स्व' में टिकना आसान हो जायेगा । स्वतःसिद्ध तत्त्व में टिक गये तो काम क्या बाकी रहा ?...

पा लिया जो था कि पाना, काम क्या बाकी रहा ।
जानना था सोई जाना, काम क्या बाकी रहा ॥
लाख चौरासी के चक्कर से थका, खोली कमर ।
अब रहा आराम पाना, काम क्या बाकी रहा ॥
देह के प्रारब्ध से मिलता है सबको सर्व कुछ ।
फिर जगत को क्यों रिझाना, काम क्या बाकी रहा ॥

चौथे अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान कहते हैं : प्रिये ! अब मैं चौथे अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो। भागीरथी के तट पर वाराणसी (बनारस) नाम की एक पुरी है। वहाँ विश्वनाथजी के मन्दिर में भरत नाम के एक योगनिष्ठ महात्मा रहते थे, जो प्रतिदिन आत्मचिंतन में तत्पर हो आदरपूर्वक गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ किया करते थे। उसके अभ्यास से उनका अंतःकरण निर्मल हो गया था। वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से कभी व्यथित नहीं होते थे।

एक समय की बात है। वे तपोधन नगर की सीमा में स्थित देवताओं का दर्शन करने की इच्छा से भ्रमण करते हुए नगर से बाहर निकल गये। वहाँ बेर के दो वृक्ष थे। उन्हींकी जड़ में वे विश्राम करने लगे। एक वृक्ष की जड़ में उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दूसरे वृक्ष के मूल में उनका एक पैर टिका हुआ था। थोड़ी देर बाद जब वे तपस्वी चले गये, तब बेर के वे दोनों वृक्ष ५-६ दिनों के भीतर ही सूख गये। उनमें पत्ते और डालियाँ भी नहीं रह गयीं। तत्पश्चात् वे दोनों वृक्ष कहीं ब्राह्मण के पवित्र गृह में दो कन्याओं के रूप में उत्पन्न हुए।

वे दोनों कन्याएँ जब बढ़कर ७ वर्ष की हो गयीं, तब एक दिन उन्होंने दूर देशों से घूमकर आते हुए भरतमुनि को देखा। उन्हें देखते ही वे दोनों उनके चरणों में पड़ गयीं और मीठी वाणी में बोलीं : 'मुने ! आपकी ही कृपा से हम दोनों का उद्धार हुआ है। हमने बेर की योनि त्यागकर मानव-शरीर प्राप्त किया है।' उनके इस प्रकार कहने पर मुनि को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा : 'पुत्रियो ! मैंने कब और किस साधन से तुम्हें मुक्त किया था ? साथ ही यह भी बताओ कि तुम्हारे बेर के वृक्ष होने का क्या कारण था ? क्योंकि इस विषय में मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है।'

तब वे कन्याएँ पहले उन्हें अपने बेर हो जाने का कारण बतलाती हुई बोलीं : ''मुने ! गोदावरी नदी के तट पर छिन्नपाप नाम का एक उत्तम तीर्थ है, जो मनुष्यों को पुण्य प्रदान करनेवाला है। वह पावनता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। उस तीर्थ में सत्यतपा नामक एक तपस्वी बड़ी कठोर तपस्या कर रहे थे। वे ग्रीष्म ऋतु में प्रज्वलित अग्नियों के बीच में बैठते थे, वर्षाकाल में जल की धाराओं से उनके मस्तक के बाल सदा भीगे ही रहते थे तथा जाड़े के समय जल में निवास करने के कारण उनके शरीर में हमेशा रोंगटे खड़े रहते थे। वे बाहर-भीतर से सदा शुद्ध रहते, समय पर तपस्या करते तथा मन और इन्द्रियों को संयम में रखते हुए परम शांति प्राप्त करके आत्मा में ही रमण करते थे। वे अपनी विद्वत्ता के द्वारा जैसा व्याख्यान करते थे, उसे सुनने के लिए साक्षात् ब्रह्माजी भी प्रतिदिन उनके पास उपस्थित होते और प्रश्न करते थे। ब्रह्माजी के साथ उनका संकोच नहीं रह गया था, अतः उनके आने पर भी वे सदा तपस्या में मग्न रहते थे।

परमात्मा के ध्यान में निरंतर संलग्न रहने के कारण उनकी तपस्या सदा बढ़ती रहती थी। सत्यतपा को जीवन्मुक्त के समान मानकर इन्द्र को अपने समृद्धिशाली पद के सम्बन्ध में कुछ भय हुआ, तब उन्होंने उनकी तपस्या में सैकड़ों विघ्न डालने आरम्भ किये। अप्सराओं के समुदाय से हम दोनों को बुलाकर इन्द्र ने इस प्रकार आदेश दिया : 'तुम दोनों उस तपस्वी की तपस्या में विघ्न डालो, जो मुझे इन्द्रपद से हटाकर स्वयं स्वर्ग का राज्य भोगना चाहता है।'

''इन्द्र का यह आदेश पाकर हम दोनों उनके सामने से चलकर गोदावरी के तीर पर, जहाँ वे मुनि तपस्या करते थे, आयीं। वहाँ मन्द और गम्भीर स्वर से बजते हुए मृदंग तथा मधुर वेणुनाद

के साथ हम दोनों ने अन्य अप्सराओंसहित मधुर स्वर में गाना आरम्भ किया। इतना ही नहीं उन योगी महात्मा को वश में करने के लिए हम लोग स्वर, ताल और लय के साथ नृत्य भी करने लगीं। बीच-बीच में जरा-जरा-सा अंचल खिसकने पर उन्हें हमारी छाती भी दिख जाती थी। हम दोनों की उन्मत्त गति कामभाव का उद्दीपन करनेवाली थी, किंतु उसने उन निर्विकार चित्तवाले महात्मा के मन में क्रोध का संचार कर दिया। तब उन्होंने हाथ से जल छोड़कर हमें क्रोधपूर्वक शाप दिया : 'अरी ! तुम दोनो गंगाजी के तट पर बेर के वृक्ष हो जाओ।'

यह सुनकर हम लोगों ने बड़ी विनय के साथ कहा : 'महात्मन् ! हम दोनों पराधीन थीं, अतः हमारे द्वारा जो दुष्कर्म बन गया है, उसे आप क्षमा करें।' यों कहकर हमने मुनि को प्रसन्न कर लिया। तब उन पवित्र चित्तवाले मुनि ने हमारे शापोद्धार की अवधि निश्चित करते हुए कहा : 'भरत मुनि के आने तक ही तुम पर यह शाप लागू होगा। उसके बाद तुम लोगों का मर्त्यलोक में जन्म होगा और पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहेगी।'

''मुने ! जिस समय हम दोनों बेर-वृक्ष के रूप में खड़ी थीं, उस समय आपने हमारे समीप आकर गीता के चौथे अध्याय का जप करते हुए हमारा उद्धार किया था, अतः हम आपको प्रणाम करती हैं। आपने गीता के चतुर्थ अध्याय के पाठ द्वारा हमें केवल शाप से ही नहीं, इस भयानक संसार से भी मुक्त कर दिया।''

श्रीभगवान कहते हैं : उन दोनों के इस प्रकार कहने पर मुनि बहुत ही प्रसन्न हुए और उनसे पूजित हो विदा लेकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये तथा वे कन्याएँ भी बड़े आदर के साथ प्रतिदिन गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ करने लगीं, जिससे उनका उद्धार हो गया।

श्लोक

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

पहले भी जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थिर रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तप से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म-तत्त्व को भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥३६॥

यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पाप-समुद्र से भलीभाँति तर जायेगा।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥३८॥

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्मयोग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मा में पा लेता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के, तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शांति को प्राप्त हो जाता है।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और सुख ही है।

गीता धर्मप्रदीप है

'मेरा विश्वास है कि पृथ्वीमंडल की प्रचलित भाषाओं में, भगवान श्रीकृष्ण की कही हुई भगवद्गीता के समान छोटे वपु में इतना विपुल-ज्ञानपूर्ण कोई दूसरा ग्रंथ नहीं है।

गीता केवल हिंदुओं की ही नहीं, किंतु सारे जगत के मनुष्यों की निधि है। जगत के अनेक विद्वानों ने इसे पढ़कर लोक-उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले परम पुरुष का शुद्ध सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और उनके चरणों की निर्मल निष्काम भक्ति प्राप्त की है। वे पुरुष और स्त्री बड़े भाग्यवान हैं, जिनको इस संसार के अंधकार से भरे सँकरे मार्गों में प्रकाश दिखानेवाला यह छोटा, किंतु अक्षय तेल से पूर्ण धर्मप्रदीप प्राप्त हुआ है। जिनको यह धर्मप्रदीप (धर्म की लालटेन) प्राप्त है, उनका यह भी धर्म है कि वे मनुष्यमात्र को इस परम पवित्र ग्रंथ का लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करें।'

– महामना मदनमोहन मालवीय

गीता से मैं शोक में भी मुस्कराने लगता हूँ

'जिस समय मुझे शंकाएँ घेरती हैं, निराशाएँ मेरे सम्मुख होती हैं और मुझे आकाशमंडल पर कोई ज्योति की किरण दृष्टिगोचर नहीं होती, उस समय मैं गीता की ओर ध्यान देता हूँ। उसमें कोई-न-कोई श्लोक मुझे शांतिदायक अवश्य मिल जाता है और घोर शोकाकुल अवस्था में मैं तुरंत मुस्कराने लगता हूँ। मेरा जीवन बाह्य दुःखपूर्ण घटनाओं से पूर्ण है और यदि उनके प्रत्यक्ष एवं अमिट कोई चिह्न मुझ पर नहीं रह गये हैं तो इसका श्रेय भगवद्गीता के उपदेशों को ही है।'

– महात्मा गाँधी

गीता के समान कोई ग्रंथ नहीं है

'सारे संसार के साहित्य में गीता के समान कोई ग्रंथ नहीं है – गीता हमारे ग्रंथों में एक अत्यंत तेजस्वी और निर्मल हीरा है, दुःखी आत्मा को शांति पहुँचानेवाला, आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देनेवाला और संक्षेप में चराचर जगत के गूढ़ तत्त्वों को समझा देनेवाला गीता के समान कोई भी ग्रंथ संपूर्ण विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है।

हिंदू धर्म और नीतिशास्त्र के मूल तत्त्व जिन्हें जानने हों, उन्हें इस अपूर्व ग्रंथ का अवश्य और सबसे पहले अध्ययन करना चाहिए। हिंदू धर्म के सारे तत्त्वों को संक्षेप में और निःसंदिग्ध रूप से समझानेवाला गीता सदृश दूसरा कोई भी ग्रंथ संस्कृत वाङ्मय में नहीं है।

वर्ण, आश्रम, जाति, देश, स्त्री या शूद्रादि का कोई भी भेद न रखकर सबके लिए एक-सी सद्गति का बोध करानेवाला, ज्ञान, भक्ति और कर्मयुक्त गीता ग्रंथ सनातन वैदिक धर्मरूपी विशाल वृक्ष का एक अत्यंत मधुर और अमृतपद की प्राप्ति करा देनेवाला अमर फल है।' **– लोकमान्य तिलक**

गीता सब सुखों की नींव

'गीता विवेक रूपी वृक्षों का एक अपूर्व बगीचा है। यह सब सुखों की नींव है। सिद्धांत-रत्नों का भण्डार है। नवरस रूपी अमृत से भरा हुआ समुद्र है। सब विद्याओं की मूल भूमि है। अशेष शास्त्रों का आश्रय है। सब धर्मों की मातृभूमि है। सरस्वती के लावण्य-रत्नों का भण्डार है। यह गीता ज्ञानामृत से भरी हुई गंगाजी है। विवेक रूपी क्षीर सागर की नवलक्ष्मी है।' **– संत ज्ञानेश्वर महाराज**

भगवद्गीता में उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है

'प्राचीन युग की सभी स्मरणीय वस्तुओं में भगवद्गीता से श्रेष्ठ कोई भी वस्तु नहीं है।... भगवद्गीता में इतना उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है कि उसके लिखनेवाले देवता को हुए अगणित वर्ष हो जाने पर भी उसके समान दूसरा एक भी ग्रंथ अभी तक नहीं लिखा गया।... गीता के साथ तुलना करने पर जगत का समस्त आधुनिक ज्ञान मुझे

तुच्छ लगता है, विचार करने से ग्रंथ का महत्त्व मुझे इतना अधिक जान पड़ता है कि किसी-किसी समय तो ऐसा विचार आता है कि यह तत्त्वज्ञान किसी और ही युग में लिखा हुआ होना चाहिए।... मैं नित्य प्रातःकाल अपने हृदय और बुद्धि को गीतारूपी पवित्र जल में स्नान करवाता हूँ।' **– थोरो**

'गीता का धर्म, गीता की भक्ति और गीता का ज्ञान ऐसा है कि वह प्रत्येक समस्या का समाधान करता है। गीता का धर्म प्रत्येक अवस्था में आचरण में लाया जा सके ऐसा सरल और सुगम धर्म है।'

– परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

जब देवता पराजित होने लगे...

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' के स्थिति प्रकरण में कथा आती है :

पाताल में शंबरासुर नामक एक दैत्य रहता था। उसने आकाश में कितने ही नगर बसाये थे और अपनी माया के प्रभाव से वैभव की अनेक सामग्री देकर दानवों को परिपूर्ण कर दिया था। वह देवों को उखाड़ फेंकता था। जब वह सो जाता, तब देवता मौका पाकर उसकी सेना को मार डालते।

इस प्रकार विनाश होता देखकर शंबरासुर ने अपने सैन्य की रक्षा के लिए अपनी माया के प्रभाव से दाम, व्याल और कट नामक तीन दैत्यों को उत्पन्न किया। वे इतने बलवान थे कि युद्ध में देवताओं को भी थका देते थे।

उनके चित्त में अहंता-ममता या आसक्ति नहीं थी। अतः उनको हार-जीत की कोई परवाह न थी। 'हम विजयी होते रहें...' इस प्रकार का लालच भी उनके मन में न था और 'हम हार जायेंगे...' इस प्रकार का भय भी नहीं था।

लालच और भय जीव की शक्ति को कुंठित कर देते हैं। लालच और भय नहीं हैं तो सहज कर्म होते हैं। इसीलिए कहते हैं कि सेवा करो, क्योंकि सेवा में स्वार्थ नहीं होता जिससे स्वाभाविक शक्ति जाग्रत होती है।

वे तीनों असुर इसी तरह युद्ध करते थे और देवताओं को परास्त कर देते थे। आखिर थके-घबराये हुए देवता लोग ब्रह्माजी के पास गये : ''प्रभो ! शंबरासुर के तीन सेनानायक - दाम,

व्याल, कट हमें बार-बार परास्त कर देते हैं। अतः उनको हराने का कोई उपाय बताकर हम पर कृपा करें।''

ब्रह्माजी ने कहा : ''अभी दैत्य युद्ध करते-करते अनजाने में जीवन्मुक्त की नाईं अपना देहाध्यास भूल जाते हैं। उनकी चेतना युद्ध में पूर्णरूप से काम करती है और वे जीत जाते हैं।

पहले तुम लोग उनको महसूस कराओ कि वे हार रहे हैं या जींत रहे हैं। अर्थात् उनके मन में यह बात बिठा दो कि वे कर्ता-भोक्ता हैं। जब व्यक्ति देहाध्यास भूलकर कार्य में लगता है, तब सफल हो जाता है। इसलिए तुम उनमें देहाध्यास पैदा करो। कभी-कभी उनके पास जाकर उनकी प्रशंसा करो तो उनका 'मैं' स्थूल देह में आ जायेगा। तब तुम उन पर विजय प्राप्त कर सकोगे।''

मल्ल (पहलवान) कब जीतता है ? - जब कुश्ती करते-करते अपने को भूल जाता है। नर्तक का नृत्य कब शोभा देता है ?- जब नृत्य करते-करते अनजाने में 'मैं नृत्य करता हूँ...' यह भाव नहीं रहता। वक्ता भाषण या सत्संग करते-करते जब अपना देहाध्यास भूल जाते हैं, तब उन्हें पता भी नहीं होता और उनके द्वारा दिव्य ज्ञान, दिव्य प्रेम, दिव्य आनंद सहज में छलकता है जिससे हमारे चित्त पर असर होने लगता है।

जब-जब हम जाने-अनजाने में स्थूल अहं से, देहाध्यास से ऊपर उठ जाते हैं, तब-तब हमारे द्वारा उस अनंत की, विराट की चेतना काम करती है।

जा लगी माने कर्तव्यता ता लगी है अज्ञान।

अतः कर्म ऐसे करें कि कर्तापन जाग्रत ही न हो।

देवता लोग उनके पास गये और उनमें कर्तापन जाग्रत हो ऐसी चेष्टा करने लगे। धीरे-धीरे दैत्यों को लगने लगा कि 'अरे, हम योद्धा हैं... हम देवताओं को मार भगाते हैं... अगर हम मर गये तो ?...' इस प्रकार उनमें कर्तापन का भाव एवं भय जग गया।

जब व्यक्ति डरने लगता है तब उसका हौसला मारा जाता है। डर के कारण ही वह छल-कपट करने लगता है। भोग-वासना उसको कमजोर कर देती है और छल-कपट उसको तबाह कर देता है।

देवताओं के प्रयास से दाम, व्याल, कट में भी कर्तापन आ गया और वे भयभीत होने लगे। कहाँ तो वे देवताओं को चूर्ण कर देते थे और कहाँ देवताओं से भयभीत होने लगे। तब देवताओं ने संगठित होकर उन पर धावा बोल दिया तो वे तीनों पृथ्वीलोक को छोड़कर पाताल लोक में भाग खड़े हुए। वहाँ उन्हें स्त्रियाँ प्राप्त हुईं। फिर तो उनके पास जो थोड़ा-बहुत बल बाकी था, वह भी भोग-विलास में नष्ट हो गया।

एक बार यमराज किसी काम से पाताल लोक में गये, किंतु इन लोगों ने सत्कार तक न किया, मूढ़ की तरह बैठे रहे।

बड़े आदमी को न पहचानना यह मूढ़ता है। बड़े आदमी का आदर न करना यह भी अपनी तबाही करना है। बड़े आदमी का उद्देश्य-संकेत समझकर भी अपना कल्याण न करना पतन की ओर जाना है।

उन्हें देखकर यमराज क्रोधित हो उठे। उन्होंने कहा : 'इनको जिंदा जला दिया जाय।'

कहाँ तो वे देवताओं की सेना को चूर्ण कर देते थे और कहाँ अग्निकुंड में जिंदा जलाये जा रहे हैं! बाद में तो वे कई नीच योनियों - मच्छ आदि को प्राप्त हुए।

लोग तुम्हारी निंदा-प्रशंसा करके तुम्हारा देहाध्यास बढ़ा देते हैं। इससे तुम्हारी योग्यता कम हो जाती है।

जब हम निंदा और प्रशंसा को ग्रहण करते हैं, तब हमारी शक्तियाँ मारी जाती हैं। अंतर्यामी परमात्मा के साथ सम्बन्ध-विच्छेद करके जब हम अहं के साथ जुड़ जाते हैं, तब चिंता, भय, शोक, वैर, छल-कपट आदि के शिकार हो जाते हैं।

जैसे गंगा का प्रवाह बारिश में खूब चलता है, फिर बारिश बंद होने पर कहीं-कहीं पर गड्ढे में पानी रह जाता है। उन गड्ढों का जल मुख्य धारा से अलग हो जाने के कारण पिण्डदान या किसी

सत्कर्म में काम नहीं आता।

उन गड्ढों में जल तो गंगा के प्रवाह का है, किंतु जब तक गंगा की धारा से जुड़ा था, तब तक पावन माना जाता था। धारा से अलग होते ही उसकी कोई कीमत नहीं रह जाती। ऐसे ही जीवात्मा परमात्मा से पृथक् होकर अहंकार के गड्ढे में, काम-क्रोध के गड्ढे में चला जाता है तो तुच्छ हो जाता है। परंतु जब अंतर्यामी परमात्मा की शरणरूपी तेज धारा चलती है तो फिर से वह पवित्र हो जाता है, शिवस्वरूप बन जाता है। फिर उसके द्वारा बढ़िया-बढ़िया काम होते हैं।

दुनिया में जो भी बड़े लोग हुए हैं, अच्छे लोग हुए हैं वे काम करते समय 'मैं काम कर रहा हूँ... अच्छा काम कर रहा हूँ...' इस प्रकार की अहं-भावना से अनजाने में अलग रहे हैं तभी उनके द्वारा अच्छे काम हुए हैं। कार्य ऐसे करें कि आपमें कर्ता न बचे। सोचें ऐसे कि आपका स्वतंत्र अस्तित्व न बचे, किंतु जहाँ से सोचने की सत्ता आती है उस अंतर्यामी परमात्मा का चिंतन बना रहे।

कोई तुम्हारी निंदा करके तुममें विषाद जगाता है और कोई तुम्हारी प्रशंसा करके तुम्हारा अहंकार जगाता है। निंदा भी घातक है और प्रशंसा भी घातक है। निंदा और स्तुति के समय तुम सावधान रहो।

निंदा होती है तो समझें कि भगवान हमारी गलती निकालने के लिए हम पर दया कर रहे हैं और प्रशंसा होती है तो समझें कि भगवान हमारे द्वारा बढ़िया काम करवाकर सामनेवाले के द्वारा हमारा उत्साह बढ़ा रहे हैं। 'वाह प्रभु ! तेरी जय हो।' - ऐसा सोचकर निंदा-प्रशंसा दोनों को प्रभु का प्रसाद मानकर अपना अंतःकरण पवित्र बनाये रखें।

गुरु नानकजी ने कहा है :

निंदा-स्तुति सम करि जानो तथा मान-अपमान॥

मान और अपमान आने-जानेवाले हैं, ऐसा अपने को समझाकर चित्त को सम रखो। इससे समत्व योग हो जायेगा। समत्व योग आ गया तो परमात्मा में स्थिति हो गयी। फिर संसार की कोई भी परिस्थिति आपको डाँवाडोल न कर सकेगी।

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कोटि दोषं विनाशयेत्।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्व तन्त्र विनाशयेत्॥
(तेजोबिन्दु उपनिषद)

'अहं ब्रह्मास्मि' यह उपनिषद का महावाक्य है। स्वरूप-बोध का रूप यही है कि आत्मा में परिच्छिन्नता की भ्रांति ध्वस्त हो जाय, आत्मानंद का आवरण भंग हो जाय। 'मैं देहस्थ नहीं - निरतिशय बृहद् आनंद हूँ।' - यह इसका अर्थ है।

जीवन्मुक्त महापुरुष कभी शरीर को 'मैं' नहीं मानते। सदा 'अहं ब्रह्मास्मि' के नित्य निरंजन स्वरूप में रमणशील होते हैं। उनके लिए शरीर छोड़ना और धारण करना भी खेल है।

✲ हिम्मत करो। ध्यान करो। यह जगत दुर्बलों के लिए नहीं है। जय-पराजय की परवाह किये बिना लगे रहो - लगे रहो, विजय तुम्हारी ही है। तुम तो धन्य होगे ही, तुम्हारे सम्पर्क में आनेवाले भी धन्य होने लगेंगे।

✲ जो पुण्यात्मा होता है, प्रकृति के सब साधन उसके अनुकूल होने लगते हैं।

✲ न मौज उड़ाना अच्छा है,
न चोटें खाना अच्छा है।
अगर हो अक्ल ऊँची तो,
रब को पाना अच्छा है॥

✲ तू इन्द्र होने की इच्छा न कर, देवता होने की, यक्ष-गंधर्व होने की इच्छा न कर। तू तो 'जो कुछ मेरा है सो आपका हो जाय' ऐसा कर दे। तब तेरा पुण्य तेरा नहीं रहेगा, तेरा पाप तेरा नहीं रहेगा। जब पुण्य और पाप तेरे नहीं तो जो 'मैं' हूँ सो तू हो जायेगा और जो तू है सो मैं हो जाऊँगा।

✲ ईश्वर की की हुई भक्ति कभी-न-कभी

फल देती है, कभी व्यर्थ नहीं जाती।

✲ स्वर्ग का बड़े-में-बड़ा दोष यह है कि जीव के पुण्य क्षीण होने पर उसे वहाँ से मृत्युलोक में गिराया जाता है, उसका पुनः पतन होता है। मुझे ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिए कि जहाँ से फिर पतन हो। मुझे ऐसी कोई चीज नहीं चाहिए, जिसको पाने के बाद मुझे संसार में लौटना पड़े।

यत्र गत्वा न शौचन्ति न व्यथन्ति चरन्ति वा।
तदहं स्थानमन्यन्तं मार्गदिष्यामि केवलम्॥

जहाँ जाने के बाद व्यथा नहीं होती, पतन नहीं होता उसी मार्ग को मैं पाना चाहता हूँ।

✲ भगवान के जो सच्चे भक्त होते हैं, वे दुःख सहते हैं, कष्ट सहते हैं लेकिन मन में भी फरियाद नहीं करते क्योंकि अन्तर में निष्कामता का रस सदैव उनकी रक्षा करता रहता है। निष्कामता जितनी अधिक होगी, उतना ही परिशुद्ध आत्मरस उनमें प्रकट होता रहेगा।

✲ मन में दृढ़ निश्चय एवं सद्भावना भरते चलो कि भगवत्सेवार्थ ही आज से सारे कर्तव्य-कर्म करूँगा। वाहवाही के लिए नहीं, किसीको नीचा दिखाने के लिए नहीं, कोई नश्वर चीज पाने के लिए नहीं। जो भी करूँगा परमात्मा के प्रसाद का अधिकारी होने के लिए, परमात्मा को प्रेम करने के लिए, परमात्मा के दैवी कार्य सम्पन्न करने के लिए ही करूँगा। इस प्रकार परमात्मा और ईश्वर-सम्प्राप्त महापुरुष के दैवी कार्यों में अपने-आपको सहभागी बनाकर उस परम देव के प्रसाद से स्वयं को पावन बनाता रहूँगा।

✲ वह संन्यासी है, योगी है जो स्वार्थरहित हो अपने कर्तव्य का पालन करता है।

'हेतुरहित जग जुग उपकारी'

भगवान अहेतु की कृपा करते हैं। पृथ्वी अहेतु की कृपा करती है। हमें धारण करती है। हम उसे बदले में क्या देते हैं ? पृथ्वी से लेते हैं अन्न, फल और बदले में उसे देते हैं मल-मूत्र। लेंगे गंगाजल, शुद्ध पानी और देंगे गंदा दूषित जल। फिर भी पृथ्वी माता हमें धारण किये जा रही है। कितनी निःस्वार्थता है इसमें।

भारत के साधु

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सियालकोट (अभी पाकिस्तान में) की घटना है :

एक बार मेजर डिग चाय-नाश्ता करके सिगरेट पी रहा था। अपनी क्रियाशक्ति और साधनों का उपयोग बाहर का मजा लेने के लिए कर रहा था।

जब मेजर डिग सिगरेट फूँक रहा था, तभी किसी साधु ने द्वार पर आकर पुकारा :

''साहब ! कुछ खाने को मिल जाय, बहुत भूखा हूँ।''

डिग वैसे ही ईसाई था और अंग्रेज शासन का एक प्रमुख अधिकारी भी। उस समय ईसाई मिशनरियों का बोलबाला था तथा हिन्दू धर्म और साधुओं को नफरत की निगाह से देखा जाता था। आज भी ईसाई मिशनरियों के लोगों द्वारा हिन्दुओं को घृणा की नजर से देखा जाता है, हालाँकि सब ईसाई ऐसे नहीं होते, कुछ सज्जन भी होते हैं।

लेकिन कुछ लोगों ने मानो, हिन्दुओं को गुमराह करने का ठेका ले रखा है। आज भी कुछ गाँवों में हिन्दू साधुओं को तथा स्कूलों में बच्चों को गुमराह करके शिक्षा के माध्यम से हमारे ही देश तथा संस्कृति के प्रति नफरत का जहर घोला जा रहा है। भारतवासी ! सावधान !!

वह डिग भी इन्हीं में से एक था। उसने घृणाभरी निगाहों से देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा :

''जाओ यहाँ से।''

लेकिन भारत का वह साधु भी अलबेला था। जिसके पास सुख-भोग की बाह्य वस्तुएँ खूब

दिखती हों लेकिन वह उनका सदुपयोग नहीं करता तो वह दिखने में भले बड़ा दिखे लेकिन भीतर से बहुत छोटा होता है और जिसके पास बाहर से कुछ भी न दिखे फिर भी जिसने अपनी क्रियाशक्ति और विचारशक्ति का सदुपयोग किया है, जिसके पास मानवीय संवेदना है वह बाहर से छोटा, भिखारी होते हुए भी सबसे बड़ा धनी है, क्योंकि उसने बड़े-में-बड़ा परमात्मधन पाया है।

डिग को नाक-भौं सिकोड़ते देखकर साधु ने कहा : ''साहब ! आप खा-पीकर मजे से बैठकर सिगरेट फूँक रहे हो और मैं दो दिन से भूखा हूँ। जो कुछ भी खाने-पीने की चीजें हों मुझे दे दीजिये, बहुत जोरों की भूख लगी है।''

साधु बाबा ने तो बड़ी नम्रता से माँगा लेकिन उसने बाबा को दो-चार बातें और सुना दीं। बाबा ने देखा कि खाने-पीने को तो कुछ दे नहीं रहा है, ऊपर से गालियाँ सुना रहा है ? साधु के चित्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, किंतु उनके उदार हृदय में हुआ कि 'सुबह-सुबह इसके पास आया था। इसने कुछ दिया तो नहीं, फिर भी इसका भला तो करना ही चाहिए। अगर कुछ देता तो पुण्य देकर इसका भला करता। अब नहीं दिया है तो दण्ड देकर भी इसका भला करना ही पड़ेगा।' कैसी संवेदना से भरी समझ होती है भारत के साधुओं की !

आशिकों को वाज़िब है कि यही फिर से दुआ करे।
जिसने दिया दर्दे दिल उसका खुदा भला करे॥

बाबा भिक्षा लेने को अड़ गये। डिग गुर्राता रहा, बाबा माँगते रहे... बाबाजी इस बात को जानते थे कि दुःखी होना - न होना अपने हाथ की बात है। फिर भी उसकी उछल-कूद को विनोदभाव से निहार रहे थे।

वे बाबा ऐसे ही मौजी थे। आखिर मेजर डिग का गुस्सा इतना उभरा कि उसने अपनी मेज ठोकी, अपने नौकरों को बुलाया और कहा :

''धक्के मारकर भगा दो इस साधु को !''

बाबा ने एक निगाह नौकरों पर डाली। नौकर तो रोबोट की नाईं खड़े रह गये ! डिग नौकरों को डाँटने लगा लेकिन नौकर यों ही खड़े रहे। फिर उसने अपने खूँखार कुत्ते को दौड़ाया लेकिन ज्यों ही बाबा की नजर कुत्ते पर पड़ी, कुत्ता पूँछ हिलाने लगा !

डिग दंग रह गया फिर भी बाबा की महिमा न समझ पाया। उसने पुनः गाली दी। बाबा अब आ गये अपने बाबा के पद पर ! बोले :

''डिग के बच्चे ! तू मुझे भूखा-प्यासा रखता है ? मैं शांत खड़ा हूँ, फिर भी तू मुझे सताये जा रहा है तो तुझे भी सजा मिलनी चाहिए।''

बाबा ने पानी लिया और संकल्प करके डिग पर छिड़क दिया : ''आज से एक महीने के भीतर तू भी चैन से नहीं रहेगा। खा भी नहीं सकेगा, पी भी नहीं सकेगा, उठ-बैठ भी नहीं सकेगा और इस घर में भी तू नहीं रह सकेगा। फिर आखिर में मैं ही तुझे खिलाऊँगा।''

बाबा तो इतना कहकर चल पड़े। डिग ने कहा : ''देख लेंगे तुम्हारी साधुताई को।''

वे बाबा चलते-चलते एक हिन्दू कर्नल के घर पर रुके। उसकी पुत्री का नाम था इला। वह कुछ पढ़ रही थी। बाबा ने कहा :

''बेटी ! मैं दो दिन से भूखा हूँ, कुछ खाने-पीने को हो तो दे दे।'' वह लड़की भी कान्वेंट स्कूल में पढ़ती थी, अतः उसको भी साधु-संतों से नफरत थी। फिर भी उसका खून भारतीय था। उसने सोचा कि 'बेचारे और कुछ नहीं, खाने का ही माँग रहे हैं।' उसने कुछ लाकर दे दिया। बाबा ने संतोष व्यक्त किया।

संत का हृदय संतुष्ट होता है तो कल्याण किये बिना नहीं रह सकता। वह आज दिखे, चाहे कल या परसों... संत की कृपा तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगी।

इला के घर में भविष्य में क्या होनेवाला है, यह साधु ने योगबल से देखा। फिर उससे कहा :

''तुम्हारे घर में एक महीने के भीतर घर का मुख्य व्यक्ति बीमार पड़ेगा। डॉक्टर इलाज करके थक जायेंगे। मुंबई के डॉक्टर आयेंगे, वे भी थक जायेंगे। मैं तुझे यह फल देता हूँ। यह हिमालय में बर्फ से आच्छादित क्षेत्र में लगता है और बड़ी

मुश्किल से मिलता है। इसे अँगीठी जलाकर उसमें डाल देना और कमरा बंद रखना। भगवान कृपा करेंगे, उनकी मृत्यु की घड़ियाँ टल जायेंगी।''

इला को श्रद्धा तो नहीं थी, किंतु हिन्दू माता-पिता की संतान थी इसलिए उसने अवहेलना भी नहीं की। वह फल उठाकर अलमारी में रख दिया।

दो-पाँच दिन के बाद ही एकाएक उसके पिता को ऐसी कोई बीमारी हुई कि ऑफिस से तुरंत लाना पड़ा। फौजी डॉक्टरों ने हाथ धो लिये। मुंबई से विशेषज्ञ बुलाये गये, वे भी असमंजस में पड़ गये। कर्नल का शरीर ठंडा होने लगा। नाड़ी चल रही है कि नहीं - यह पता करना भी मुश्किल हो गया। इतने में वही बाबा आ धमके और बोले :

''इला ! मैं फल दे गया था। उसे तूने अलमारी में रख दिया था। जा, जल्दी कर, वह फल ले आ। तू तो मेरे फल को भूल गयी लेकिन तूने मेरी जो सेवा की थी, उसे मैं नहीं भूला हूँ। इसलिए तुझ पर संकट आ पड़ने पर तेरे पिता की रक्षा करने आ गया हूँ।''

बाबा ने अँगीठी जलायी और उसमें फल डाला। देखते-देखते उसके पिता के शरीर में गर्मी आ गयी।

डॉक्टरों ने कहा : ''अब यह जानेवाला है, क्योंकि वैसे भी मरते समय आदमी थोड़ा चेतन हो जाता है।'' लेकिन सच्चाई यह थी कि उसके पिता मौत के मुख से बाहर आ गये थे। डॉक्टर यह देखकर चकित रह गये। इला भी चकित हो उठी। डिग की बेटी इला की सखी थी। उसने अपने पिता को सारा हाल बताया और कहा : ''वही साधु हमारे घर पर आये थे।''

डिग को हुआ कि 'इतना समर्थ साधु ! उसने कहा था कि एक महीने बाद तुम्हें भोजन-पानी नहीं मिलेगा... बड़ी गलती हो गयी।'

एक महीना बीत गया। डिग मेज खटखटाता है तब भी कोई नौकर नहीं आता। क्या बात है ? वह उठकर देखता है कि सारे नौकर चले गये हैं, केवल एक बूढ़ा नौकर पड़ा कराह रहा है। डिग ने पूछा :

''सब कहाँ गये ?''

नौकर : ''चूहे मर रहे हैं। प्लेग फैल गया है। सर ! आप इधर न आइये।''

डिग की पत्नी ने चाय बनायी तो उसमें से मिट्टी के तेल की बदबू आने लगी। इतने में एक फौजी आया : ''सर ! आपको यह बँगला खाली करना है। यहाँ प्लेग फैला है। आप यहाँ नहीं रह सकते। चलिये, और कहीं व्यवस्था कर देते हैं।''

नहाये-धोये बिना ही बेटी और पत्नी समेत डिग नये निवास में गये। रसोइये को भोजन बनाने का आदेश दिया। ११ बज गये थे। पेट में चूहे कूद रहे थे। नौकर जब भोजन बनाकर लाया तो भोजन तो ढँका हुआ था। ज्यों बर्तन खोला तो सड़ा-गला घास ! वह भी बदबू मार रहा था ! डिग शर्मिंदा हो उठा, नौकरों को डाँटा तो उन्होंने कहा : ''हम तो भोजन लाये थे, यह कैसे हो गया ?''

नौकरों ने फिर से भोजन बनाया। बनाते-बनाते २ बज गये। जैसे ही नौकर भोजन का थाल लेकर आया, उसके हाथ से थाल छूट गया। डिग के मुँह में तो कुछ नहीं पड़ा लेकिन कपड़ों पर गिरा और कपड़े खराब हो गये।

अब डिग को अनुभव हुआ कि प्रकृति भारत के साधु के वचन कितने साकार कर रही है। गजब की है भारत के साधुओं की संकल्पशक्ति !

डिग ने नौकरों से कहा : ''तुम्हारा कसूर नहीं है, मेरा भाग्य ही ऐसा है। मुझे खाना नहीं मिलेगा।''

सुबह से स्नान नहीं किया, चाय तक नहीं पी, भोजन भी नसीब में नहीं... गाड़ी लेकर बाजार गया और कुछ मिठाई खरीदी। वह अफसर था, अतः दुकान पर खड़े-खड़े खा भी नहीं सकता था। थोड़ी दूर किसी शांत जगह पर जाकर ज्यों ही मिठाई का पैकेट खोला, त्यों ही बदबू-बदबू ! सूर्यास्त होने को आया।

डिग रेलवे स्टेशन पर गया तो स्टेशन मास्टर ने कहा : ''हमारी मेस बंद हो गयी है क्योंकि हैजा फैला हुआ है। अगर आपको भोजन करना है तो फलानी जगह पर जाकर कर सकते हो, किंतु

उधर की गाड़ी निकल गयी है । आप कल जा सकते हो ।''

भूख आज लगी है और खाने कल जाऊँ ? सूर्यास्त हो ही रहा था । डिग वहाँ से जाने लगा । रास्ते में वही बाबा खड़े दिखायी दिये ! डिग का अहंकार पिघल चुका था । उसने बाबा के चरणों में प्रणाम किया । बाबा ने कहा :

''अच्छा, भारत के साधु ऐसे हैं - वैसे हैं... हिन्दू-विरोधी पादरियों के द्वारा तूने यह जहर पिया है, इसीलिए तू ऐसा बना । नहीं तो तू भी है तो मनुष्य । चल, कोई बात नहीं । हम तुझे दुःखी नहीं करना चाहते थे लेकिन दूसरा कोई उपाय भी नहीं था तेरी भलाई का । चलो, साहब ! भोजन करा दें ।''

डिग वही साहब था, जिसने थोड़ी-सी भिक्षा के लिए हिन्दू साधु को गालियाँ दी थी और वही हिन्दू साधु है कि कहता है : 'चलो, साहब ! भोजन करा दें ।' यह घटना साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में छपी थी ।

मेजर डिग क्या कहे ? क्या करे ? साधु को गाड़ी में बिठाकर ले चला । मेजर डिग, उसकी पत्नी और बेटी को थोड़ी दूर ले जाकर साधु ने गाड़ी रुकवायी और एक झोंपड़े के अंदर गये । वहाँ से बना-बनाया गर्मागर्म भोजन लाये, तीनों को बिठाकर प्यार से खिलाया । मेजर डिग सोच रहा है कि 'है तो छोटी-सी झोंपड़ी, फिर ये गर्मागर्म भोजन कहाँ से आया ?' किंतु वह न जान सका । मन-ही-मन नतमस्तक हो उठा । भोजन के बाद बाबा ने उसे बड़े प्रेम से विदा किया ।

मेजर डिग तो बाबा का भक्त बन ही गया, और अफसर भी साधुओं को प्रणाम करने लगे ।

कैसे हैं भारत के साधु ! कैसी है भारतीय संस्कृति ! कैसा है सनातन विज्ञान !

सनातन धर्म ने कभी किसीसे द्वेष करना नहीं सिखाया । प्राणिमात्र में अपना परमात्मा है - इस बात पर हम विश्वास करते हैं । किंतु जो हिन्दू धर्म के लिए जहर घोलते हैं, उनसे जरूर सावधान रहें...

*

मुक्ति के चार साधन

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

साधक में चार गुण होने चाहिए : (१) विवेक (२) वैराग्य (३) षट्सम्पत्ति (४) मुमुक्षुत्व ।

यदि ये चार योग्यताएँ साधक में हों तो उसको ऐसे परमात्मपद की प्राप्ति होती है, जिसके आगे भारत और दुनिया के मुख्य पद तो क्या इन्द्र का पद भी तुच्छ भासता है ।

पीत्वा ब्रह्मरस योगिनो भूत्वा उन्मतः ।
इन्द्रोऽपि रंकवत् भासयते अन्यस्य का वार्ता ?

ब्रह्मरस का सुख लेकर वह योगी इतना बेपरवाह और निर्भीक हो जाता है कि इन्द्र भी उसको रंक जैसा लगता है तो औरों की तो बात ही क्या ?

विवेक : नश्वर क्या है - शाश्वत क्या है ? नित्य क्या है - अनित्य क्या है ? मेरे साथ क्या चलेगा - क्या छूट जायेगा ? कितने भी भोग भोगे अंत में क्या ? कितना भी ऊँचा पद पा लिया आखिर में क्या ? यदि हेरा-फेरी की, इधर-उधर करके बेटे-बेटियों के लिए रखा तो इससे अंतःकरण तो मेरा ही मलिन होगा, परलोक तो मेरा ही बिगड़ेगा । मैं अपना परलोक क्यों बिगाड़ूँ ? ऐसा विवेक होना चाहिए ।

साधक अगर विवेकी होगा तो अनित्य वस्तुओं के लिए नित्य आत्मा पर आवरण नहीं डालेगा । कंकड़-पत्थर के बदले में कोहीनूर नहीं दे देगा । बिल्ली के बदले में अपनी माँ की अदला-बदली नहीं करेगा, क्योंकि संसार की तुच्छ चीजें यहीं पड़ी रह जायेगी । बेटे, बहू, पत्नी आदि प्रारब्ध में जितना होगा उतना ही खा सकेंगे, उतना ही जी सकेंगे तो बेईमानी करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ना ?

जब विवेक तीव्र होगा तब यहाँ के सारे भोग तो तुच्छ और नश्वर दिखेंगे ही, किंतु परलोक के भोगों का आकर्षण भी अंदर में नहीं रहेगा।

अविनाशी आतम अमर, जग तातें प्रतिकूल।
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधन को मूल॥

विवेक तीव्र होगा तो ब्रह्मलोक तक के पद को अस्वीकार कर देगा।

आत्मा अविनाशी है, जगत विनाशी है। आत्मा नित्य है, जगत अनित्य है। आत्मा एकरस है, जगत परिवर्तनशील है। आत्मा शाश्वत है, जगत नश्वर है। ऐसा विवेक होना चाहिए।

वैराग्य : इस लोक एवं परलोक के सभी भोगों की इच्छा न होना वैराग्य है। जब विवेक तीव्र होता है तब वैराग्य आने लगता है। वैराग्य तीव्र होने पर परमात्मप्राप्ति की इच्छा जग जाती है।

षट्सम्पत्ति : इसमें छः बातें होती हैं :

(१) शम : मन को विषयों की ओर जाने से रोकने का अभ्यास करना शम है। जप-ध्यान आदि करके मन को शांत किया जा सकता है। मन शांत हो तो इन्द्रियाँ भी शांत होने लगती हैं।

(२) दम : इन्द्रियों को विषयों की ओर से रोकने का नाम दम है। आँख किसी वस्तु को देखती है तो उसकी ओर लपकती है। ऐसे ही कान शब्द का, नाक सुगंध का, जिह्वा स्वाद का एवं त्वचा स्पर्श का सुख लेना चाहती है। इन विषय-विकारों से इन्द्रियों को रोकना दम कहलाता है।

(३) तितिक्षा : ईश्वरप्राप्ति के मार्ग पर मान-अपमान, सर्दी-गर्मी आदि प्रतिकूलताओं और कष्टों को हँसते-हँसते सहकर भी डटे रहने का नाम है तितिक्षा। बड़े-बड़े राजे-महाराजे गुरु के द्वार पर झाड़ू लगाते, डाँट-फटकार सहते, अपमान सहते फिर भी लगे रहते थे।

दरभंगा के राजा ने महात्मा से पूछा : ''महाराज ! संन्यासी के लक्षण क्या हैं ?''

गुरुदेव ने ब्रह्मचारी (शिष्य) से कहा : ''धत् तेरे की ! संन्यासी के लक्षण पूछने आया है ? इस राजा के कान पकड़कर बाहर निकाल दो। बड़ा आया संन्यासी के लक्षण पूछनेवाला !''

ब्रह्मचारी ने राजा को बाहर निकाल दिया। दरभंगा का राजा बड़ा श्रद्धालु था। आत्मारामी संतों की महिमा जानता था। रातभर बाहर खड़ा ठंड से ठिठुरता रहा। सुबह महाराज घूमने निकले, राजा को खड़े देखकर बोले : ''क्यों ? गये नहीं ?''

''नहीं, महाराज !''

''तेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया न ? संन्यासी वह है जो बेपरवाह हो। जो राजा-महाराजाओं के सुख-वैभव को भी ठुकरा दे, उसको संन्यासी कहते हैं, यही उसका लक्षण है। यह केवल कहकर नहीं, करके दिखा दिया। तेरे सवाल का जवाब दे दिया।''

राजा ने तितिक्षा सही, रातभर ठिठुरता खड़ा रहा। तितिक्षा सहकर प्रश्न का उत्तर मिला। उसने काम किया, जीवन बदला। इसी प्रकार भर्तृहरि, गोपीचंद आदि राजा भी गुरु के द्वार पर तितिक्षा सहकर रहे।

हमें भी गुरु के चरणों में रहने के लिए क्या-क्या विक्षेप सहना पड़ता था। हमें निकालने के लिए अन्य गुरुभाई ऐसी-वैसी न जाने क्या-क्या फरियादें बनाकर गुरुजी को बताते... गुरुजी हमें डाँटते तो हम समझते चलो, गुरुजी की डाँट है, हमारी भलाई के लिए कहते हैं। देर-सवेर गुरुजी की कृपा होगी। दूसरे सब जो जलते थे, उन्होंने एक संगठन बनाया। आखिर सब बिखर गये किंतु मुझ पर गुरुजी की कृपा अभी भी है। गुजराती में कहा गया है :

हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने...

अर्थात्

हरि-मार्ग है शूरों का, नहीं कायर का काम यहाँ।

(४) उपरति : जिन विषय-विकारों को, जिन कुटुम्बियों एवं मकान-दुकान के मोह को छोड़कर आये फिर से उधर न जायें। जैसे वमन किया हुआ चाटना मनुष्य के लिए असंभव है, ऐसे ही जिनको त्याग दिया उनकी ओर न जाना इसका नाम उपरति है।

जो फिर से उन विषयों की तरफ, संसार की तरफ जाता है वह बिना पेंदे के लोटे के समान है। एक बार जिन सद्गुरु के चरणों में सिर झुकाया, फिर उन्हीं की जो निंदा करता है, वह आदमी किसी भी उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता।

(५) श्रद्धा : 'श्रत्' धातु से बनी श्रद्धा। सत्यस्वरूप ईश्वर की तरफ दृढ़ता से लगना श्रद्धा है । जिसके जीवन में श्रद्धा है, वही ज्ञान को पाने का अधिकारी है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी 'गीता' में कहा है : **श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं...**

(६) समाधान : शास्त्र और गुरु के सिद्धांत के अनुसार अपने मन का समाधान करना चाहिए कि चलो, हमारे गुरुदेव कह रहे हैं तथा शास्त्रों में भी लिखा है। अतः ईश्वर की ओर चलें।

मन में तर्क-कुतर्क आये और बुद्धि भगवान, गुरु और साधन-भजन से विचलित हो जाय तो समाधान की तरफ आयें।

जिसके जीवन में यह षट्सम्पत्ति हो, वही मोक्ष का अधिकारी होता है।

मुमुक्षुत्व : मुमुक्षुत्व अर्थात् मोक्ष की इच्छा। जैसे पानी में गला दबोच दिये जाने पर आप बाहर निकलने के सिवा कुछ नहीं चाहते, ऐसे ही संसार के जन्म-मरण और दुःखों से सदा के लिए पार होने की इच्छा का नाम है मुमुक्षुत्व।

ये चार गुण - विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व जिस साधक में होते हैं और जिसे सद्गुरु मिल जाते हैं, वह परमात्मप्राप्ति में अवश्य सफल हो जाता है।

*

सात चक्रों पर ध्यान का प्रभाव

चक्र : ये आध्यात्मिक शक्तियों के केन्द्र हैं। स्थूल शरीर में ये चक्र चर्मचक्षुओं से नहीं दिखते, क्योंकि ये चक्र हमारे सूक्ष्म शरीर में होते हैं। फिर भी स्थूल शरीर के ज्ञानतंतुओं-स्नायुकेन्द्रों के साथ समानता स्थापित करके उनका निर्देश किया जाता है। सात चक्र इस प्रकार हैं :

(१) मूलाधार चक्र : यह चक्र गुदा के नजदीक मेरुदण्ड के आखिरी बिंदु के पास होता है।

प्रयत्नशील योगसाधक जब किसी महापुरुष का सान्निध्य प्राप्त करता है और उसका ध्यान मूलाधार चक्र में स्थिर होता है, तब उसे धीरे-धीरे सभी सिद्धियों की प्राप्ति होती है। वह योगी देवताओं से पूजित होता है और अणिमादि सिद्धियाँ पाकर तीनों लोकों में इच्छापूर्वक विचरण कर सकता है। वह मेधावी योगी महावाक्य सुनते ही आत्मा में स्थिर होकर सर्वदा क्रीड़ा करता है।

मूलाधार चक्र का ध्यान करनेवाला साधक दादुरी सिद्धि प्राप्त करता है और अत्यंत तेजस्वी बन जाता है। उसकी जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है। कार्य-कुशलता, सर्वज्ञता और सरलता उसका स्वभाव बन जाता है। उसे भूत, भविष्य और वर्तमान - तीनों का ज्ञान हो जाता है। उसे सभी वस्तुओं के कारण का ज्ञान हो जाता है। जो शास्त्र कभी सुने तक नहीं है उनका रहस्यसहित व्याख्यान करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसे योगी के मुख में निरंतर सरस्वती देवी निवास करती है। जपमात्र से मंत्र आदि की सिद्धि होती है। उसके संकल्प में अनुपम सामर्थ्य आ जाता है। जिस क्षण योगी मूलाधार चक्र में स्थित स्वयंभू लिंग का ध्यान करता है उसी क्षण उसके पापों का समूह नष्ट हो जाता है। वह मन में जिन-जिन वस्तुओं की अभिलाषा करता है, वे सभी वस्तुएँ उसे प्राप्त होती हैं।

जो मनुष्य शरीरस्थ शिव को त्यागकर बाहर के देवों की पूजा करता है समझो, वह हाथ में आये हुए मक्खन के पिण्ड को त्यागकर छाछ के लिए इधर-उधर भटकता है।

(२) स्वाधिष्ठान चक्र : यह चक्र नाभि से नीचे के भाग में होता है। इसके ध्यान से साधक जो कभी देखे-सुने नहीं हों ऐसे अनेक प्रकार के शास्त्रों के रहस्य वाणी द्वारा वर्णन कर सकता है। वह सभी रोगों से विमुक्त होकर संसार में सुख से विचरण करता है। ऐसा योगी मृत्यु का नाश करके अमर हो जाता है। अणिमादि सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं।

(३) मणिपुर चक्र : यह चक्र नाभि केन्द्र पर स्थित होता है। इसका ध्यान धरने से सर्वसिद्धिदायी पातालसिद्धि की प्राप्ति होती है। योगी के सभी दुःख निवृत्त होते हैं और सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं। वह काल को भी जीत लेता है। इसी के प्रभाव से योगी चांगदेव १४०० साल

जीये थे। मणिपुर चक्र पर ध्यान करनेवाला योगी परकाया प्रवेश की शक्ति पा लेता है। ऐसा योगी सुवर्ण बना सकता है। वह देवों के दिव्य भण्डारों एवं औषधियों के दर्शन कर सकता है।

(४) अनाहत चक्र : इस चक्र का स्थान हृदय में है। इसका ध्यान करनेवाले योगी पर कामातुर सुन्दर स्त्री, अप्सरा आदि मोहित हो जाते हैं। उस योगी को अपूर्व ज्ञान प्राप्त होता है। वह त्रिकालदर्शी बनता है। दूरश्रवण, दूरदर्शन की शक्ति प्राप्त करता है। वह स्वेच्छा से आकाशगमन करता है। अनाहत चक्र का निरंतर ध्यान करने से उसे देवता एवं योगियों के दर्शन होते हैं और भूचरी सिद्धि प्राप्त होती है। इस चक्र के ध्यान की महिमा का कोई वर्णन नहीं कर सकता। ब्रह्मादि देवता भी इसे गुप्त रखते हैं।

(५) विशुद्धाख्य चक्र : यह केन्द्र कण्ठकूप में होता है। जो योगी इस चक्र का ध्यान करता है, उसे चारों वेद रहस्यसहित समुद्र के रत्न के समान प्रकाश देते हैं। यदि योगी इस चक्र में मन एवं प्राण स्थिर करके क्रोध करता है तो तीनों लोक कंपायमान हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं है। यदि इस चक्र में मन लय पाता है तो योगी के मन-प्राण अंतर में रमण करने लगते हैं। योगी का शरीर वज्र से भी कठोर हो जाता है।

(६) आज्ञाचक्र : यह चक्र दोनों भौहों के बीच होता है। इस चक्र का ध्यान करने से पूर्वजन्म के सभी कर्मों का नाश हो जाता है। यक्ष, राक्षस, गंधर्व, अप्सरा, किन्नर आदि ध्यानयुक्त योगी के वश में हो जाते हैं। आज्ञाचक्र में ध्यान करते समय जिह्वा उर्ध्वमुखी (तालु की ओर) रखनी चाहिए। इससे सभी पातकों का विनाश होता है। ऊपर वर्णित पाँचों चक्रों के ध्यान का समस्त फल इस चक्र के ध्यान से प्राप्त हो जाता है। इस चक्र का ध्यान करनेवाला वासना के बंधन से मुक्त हो जाता है। वह राजयोग का अधिकारी बनता है।

(७) सहस्रार चक्र : सिर के ऊपरी भाग में जहाँ शिखा रखी जाती है, वहाँ यह चक्र होता है। इस चक्र का ध्यान करने से योगी परम गति 'मोक्ष' को प्राप्त होता है।

जब रक्षक बने भगवान...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

एक कन्या के पिता शराबी थे और माँ मर चुकी थी। वह कन्या भगवान श्रीकृष्ण की भक्त थी। शराब पीने में पिता की सारी सम्पत्ति चट हो गयी। आखिर उसने अपनी बेटी को बेचने की तैयारी की।

लड़की १६-१७ साल की हो चुकी थी। वह देखने में तो सुन्दर थी ही, परिश्रमी भी थी। पिता उसे बेचने के लिए बाजार में ले गये। यह वह जमाना था जब गाय-भैंस-बकरी आदि की तरह इन्सान भी बेचे जाते थे।

लड़की बेचारी क्या करती ? वह भगवान से प्रार्थना कर रही थी। उसकी बोली लगने लगी - पहले ने बोली लगायी १००० रुपये। दूसरे ने ११०० रुपये, तीसरे ने १२०० रुपये - ऐसा करते-करते २५०० रुपये तक बात गयी।

आखिर एक अजनबी आदमी ने देखा कि २५०० रुपये से ज्यादा की बोली नहीं लग रही है तो उसने ३००० रुपये कहे। शराबी पिता ने ३००० रुपये लेकर लड़की को उसके हवाले कर दिया।

खरीददार ने लड़की से कहा : 'आगे-आगे चल।' और खुद डंडा लेकर पीछे-पीछे चलने लगा।

लड़की मजबूर थी। मन में विचारती जा रही थी कि 'हे भगवान ! अब मेरा क्या होगा ? पता नहीं यह खरीददार मेरे साथ कैसा व्यवहार करेगा ? मेरे शराबी बाप ने तो मुझे बेच दिया है, अब तुम्हीं मेरे रक्षक हो...'

इतने में पीछे से आवाज आयी : ''तू डर मत। मैं तेरे साथ हूँ।''

लड़की सोचने लगी : 'क्या पता कौन मेरे साथ है ?'

इतने में पुनः आवाज आयी : ''तू डर मत, मैं तेरा रक्षक तेरे साथ हूँ।''

उसे पीछे मुड़कर देखने में भी डर लग रहा था। फिर से आवाज आयी : ''डर मत।''

उसने पीछे मुड़कर देखा तो खरीददार की जगह ९-१० वर्ष के नन्हे-मुन्ने बंसीधर श्रीकृष्ण खड़े हैं !

श्रीकृष्ण ने कहा : ''तूने प्रार्थना की थी। बाजार में तेरे लिए २५०० रुपये से ज्यादा बोली लगानेवाला कोई नहीं था। इसलिए ३००० रुपये देकर मैंने तुझे उन बदमाशों से बचाया। अब तू एकान्त में कुटिया बनाकर भजन कर या किसी आश्रम में रहकर भजन कर, तेरी मर्जी।''

वह भावविभोर हो उठी... उसकी प्रार्थना फली। सच्चे हृदय से की गयी प्रार्थना फलती ही है। इसीलिए कहते हैं :

सच्चे हृदय की प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है।
भक्तवत्सल के कान में, वह पहुँच झट ही जाय है॥

समर्थ भगवान सर्वेश्वर-परमेश्वर कब, किस रूप में प्रकट हो जाय और किस रूप से सहाय कर दे, यह मनुष्य की बुद्धि से परे है।

जब तक बालक खिलौनों से खेलता रहता है तब तक माँ उसे गोद में नहीं लेती लेकिन एक... दो... तीन... खिलौनों से खेलने के बाद बालक खिलौने छोड़कर रो देता है तो माँ तुरंत आकर उसे गोद में उठा लेती है। ऐसे ही जब तक तुम संसाररूपी खिलौनों से खेलते हो, तब तक ईश्वर भी सोचते हैं कि 'ठीक है, अभी तो बालक खेल रहा है।' किंतु जब तुम सब खिलौनों को छोड़कर केवल उन्हींको पुकारते हो तो वे भी सब नियमों को ताक पर रखकर तुरंत प्रकट हो जाते हैं। जरूरत तो है बस, तीव्र आकांक्षा की।

मकर संक्रांति का महत्त्व

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

द्रोणाचार्य बड़ी गरीबी में जीवन-यापन करते थे। उनका अयाचक व्रत था, किसीसे कुछ माँगते न थे। लूली-लंगड़ी गाय थी, उसीके दूध से दही, छाछ, मक्खन आदि बनाकर द्रोणाचार्य की धर्मपत्नी कृपी परिवार का गुजारा करती थी।

कृपी ने देखा कि संत दुर्वासा हमारे द्वार पर आये हैं। उसने बड़े प्रेम से उनके भोजनादि की व्यवस्था की। संत लेते तो कुछ अन्न-जल या पत्र-पुष्प हैं लेकिन देना बहुत ऊँचा चाहते हैं, क्योंकि देना उनका स्वभाव हो जाता है, दिये बिना उनसे रहा नहीं जाता।

दुर्वासा ने कृपी से पूछा : ''बेटी ! सेवा करने से तेरे चेहरे पर जो प्रसन्नता दिखाई देनी चाहिए वह दिखाई नहीं दे रही। क्या बात है ?''

कृपी ने अपना दुःख सुनाते हुए कहा : ''पतिदेव धनुर्विद्या में मशगूल हैं। उनका अयाचक व्रत है। घर में एक लंगड़ी गाय है, जिससे बड़ी कठिनता से गुजारा होता है।''

''बेटी ! एक कठिनाई और सह ले। जब मकर संक्रांति आये तब दूध जमाकर दही बनाना। श्रीकृष्ण और माता यशोदा की छोटी-सी प्रतिमा बनवा लेना। उसे उस दधिमंथन की जगह पर उस दही में रखना। फिर निकालकर दही मथना और मक्खन बनाना। कन्हैया और माता यशोदा को उसका भोग लगाकर मकर संक्रांति के दिन दान कर देना। उस दिन किया गया दान अनंत गुना फल देता है। तेरा पुत्रप्राप्ति का संकल्प भी पूरा हो

जायेगा और धनप्राप्ति का संकल्प भी।''

कृपी ने ऐसा ही किया। उन्हें संत के संकल्प एवं व्रत के प्रभाव से अश्वत्थामा जैसा पुत्र प्राप्त हुआ एवं धन-धान्य भी बढ़ गया। अश्वत्थामा सात चिरंजीवियों में एक हैं और अभी भी नर्मदा किनारे किसी-किसी को दर्शन देते हैं।

मकर संक्रांति अथवा उत्तरायण दान-पुण्य का पर्व है। इस दिन किया गया दान-पुण्य, जप-तप अनंतगुना फल देता है।

इस दिन कोई रुपया-पैसा दान करता है, कोई तिल-गुड़ दान करता है। मैं तो चाहता हूँ कि आप अपने को ही भगवान के चरणों में दान कर डालो। उससे प्रार्थना करो कि 'हे प्रभु ! तुम मेरा जीवत्व ले लो... तुम मेरा अहं ले लो... मेरा जो कुछ है वह सब तुम ले लो... तुम मुझे भी ले लो...।'

जिसको आज तक 'मैं' और 'मेरा' मानते थे वह ईश्वर को अर्पित कर दोगे तो बचेगा क्या ? ईश्वर ही तो बच जायेंगे...

गर्भपात - महापाप

ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमैः।
दम्भिनो निन्दकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः॥

श्रेष्ठ पुरुषों ने ब्रह्महत्या आदि पापों का प्रायश्चित्त बताया है, पाखण्डी और परनिन्दक का भी उद्धार होता है; किंतु जो गर्भस्थ शिशु की हत्या करता है, उसके उद्धार का कोई उपाय नहीं है। **(नारद पुराण, पूर्व.: ७.५३)**

भिक्षुहत्यां महापापी भ्रूणहत्यां च भारते। कुंभीपाके वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ गृध्रो जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः। काकश्च सप्तजन्मानि सर्पश्च सप्तजन्मसु॥ षष्टिवर्षसहस्त्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। नानाजन्मसु स वृषस्ततः कुष्ठी दरिद्रकः॥

संन्यासी की हत्या करनेवाला तथा गर्भ की हत्या करनेवाला भारत में महापापी कहलाता है। वह मनुष्य कुंभीपाक नरक में गिरता है। फिर हजार जन्म गीध, सौ जन्म सूअर, सात जन्म कौआ और सात जन्म सर्प होता है। फिर ६० हजार वर्ष विष्ठा का कीड़ा होता है। फिर अनेक जन्मों में बैल होने के बाद कोढ़ी मनुष्य होता है।

(देवी भागवत : ९.३४.२४, २७,२८)

मनमुख और हरिजन

✲ स्वामी लीलाशाहजी महाराज ✲

'आत्मरस चाखा नहीं, जुग-जुग जीया तो क्या हुआ ?' जीवित रहते मजा है जीवन्मुक्ति का। मनुष्य ने वह न लिया तो उसके यति, त्यागी बनने से क्या लाभ ? वह रस अर्थात् आत्मरस, आत्मानंद लेने के सिवा और महापुरुषों का आश्रय लेने के सिवा आदमी मनमुख हो जाता है। मनमुख फिर क्या करेगा ? अपना स्वयं भी नाश करेगा तो दूसरों में भी ऐसी आदतें डालेगा। वे फिर न जाने कितनों का खाना खराब करेंगे ! यदि कोई मनुष्य बुरा होता है तो वह केवल अपनी ही हानि नहीं करता, किंतु वह जनता के लिए भी आजार (बीमारी) बन जाता है।

✲ जिसने पढ़ा, किंतु उस पर आचरण न किया, उसने पढ़कर किया ही क्या ? उस मनुष्य की बिल्कुल दुर्दशा होती है। मनमुख मनुष्य अन्त में बड़ा नास्तिक हो जाता है। पूछोगे कि 'ऐसा फिर कैसे ?' वह इस प्रकार बनता है। जहाँ कुछ आदमी बैठे होंगे, वहाँ उनकी उपस्थिति में न करने योग्य काम कुछ भी नहीं करेगा, किंतु उनकी अनुपस्थिति (एकान्त) में न करने योग्य कार्य करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि वह भगवान का अस्तित्व नहीं समझता अर्थात् भगवान को हर जगह व्यापक नहीं जानता। इस अवस्था में वह नास्तिक नहीं हुआ तो और क्या हुआ ? ऐसों का कल्याण होनेवाला नहीं।

✲ मत समझो कि हम कुछ हो गये हैं। सदैव सावधान रहो। जैसे चोर ताकते रहते हैं कि पहरेदार

को नींद आये तो हम चोरी कर लें, वैसे काम, क्रोध आदि विकाररूपी चोर ताकते रहते हैं कि तुम कब बेखबर बनते हो, ताकि वे तुम्हें लूटकर भिखारी बना दें। वे विकार तुम्हारे महान शत्रु हैं। बड़े-बड़े साधु-महात्माओं को उन्होंने मार गिराया है। अपने साथ विवेक-वैराग्य का डंडा रखो। विकारों को अपने ऊपर मत छा जाने दो।

✲ कोई व्यक्ति सब्जी मण्डी में जाता है। उसका विचार है कि गाजर ले आऊँ। जब वह इसी ख्याल से जाता है, समझते हो वह क्या ले आयेगा ? अवश्य वह गाजर ही ले आयेगा। दूसरी मण्डी में गेहूँ लेने के विचार से बोरी लेकर जाता है तो वह अवश्य गेहूँ ही लेकर लौटेगा और न गेहूँ की जगह घी। तीसरा चीनी लेने जाता है तो चीनी ही लेकर आयेगा क्योंकि उसके चित्त में जो खरीददारी का ख्याल होगा, वही कार्य रूप में आयेगा।

इसी प्रकार जैसे-जैसे हमारे विचार होंगे वैसे-वैसे हमारे कार्य होंगे शुभ विचार होंगे तो कार्य भी शुभ होंगे, अशुभ विचार होंगे तो कार्य भी अशुभ होंगे। इसलिए कभी भी अपने मन में अपवित्र विचार उत्पन्न न होने दो। ज्ञान के अंकुश से अशुभ विचारों को दबा दो।

यदि एक बार किसी प्रकार के अशुभ विचार आपके हृदय में घुसे तो फिर अपना कल्याण न समझना। वे तुम्हारे ऊपर डाका डालने के सिवा न रहेंगे। तुम्हारे ऊपर वे हावी हो जायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि वे तुमसे अनुचित, शैतानी काम कराकर तुम्हें अपने बल से नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इसलिए शुद्ध बुद्धि से उन्हें नीचा दिखा दो। प्रारम्भ में ही शत्रु पर सिक्का जमाओ। उसे प्रारम्भ में ही अपने ऊपर छा न जाने दो। तुम अपने आत्मिक बल और विवेक-वैराग्य रूपी तलवार से उन्हें मारकर प्रेमाभक्ति में मौज उड़ाते रहो।

✲ बुरे संकल्प ही सब बुराइयों की जड़ हैं। बुरे संकल्प गृहस्थी अथवा संन्यासी, सबके लोक और परलोक, दोनों बिगाड़नेवाले हैं। इसलिए बुरे संकल्पों से बचो।

✲

भक्ति बड़ी भगवान से...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

कबीरजी ने कहा है कि भक्ति भगवान से भी बड़ी है। भगवद्भक्ति करो तो वह भगवान को भी खींचकर ले आती है और उसे हर कोई कर सकता है। भगवद्विचार, जप-सुमिरन सब कर सकते हैं।

भक्ति करते-करते मन शांत होगा तो बुद्धि परमात्मा में स्थित होगी। फिर बुद्धि अनमोल हो जायेगी। ऐसा नहीं कि कोई बुद्धिमान किसी वकील को १० हजार की नौकरी पर रख दे तो १० हजार में बुद्धि बिक गयी... भगवान में बुद्धि प्रतिष्ठित हो गयी तो उसे कोई खरीद नहीं सकता। वह फिर अनमोल हो जाती है।

माणिक मोती और हीरे, जितने रतन जग माहीं।
सब वस्तु को मोल जगत में, मोल बुद्धि को नाहीं॥

जगत में हीरे-जवाहरात, माणिक-मोती आदि जितने भी रत्न हैं, उन सबका मोल हो सकता है लेकिन बुद्धि अगर भगवान में टिक गयी, भगवान में प्रतिष्ठित हो गयी तो उसका मोल कोई नहीं कर सकता।

किसी वकील अथवा अधिकारी को आप १०-२० हजार वेतन दे सकते हैं लेकिन जिसकी बुद्धि परमात्मा में प्रतिष्ठित हो गयी, उसको आप खरीद सकते हैं क्या ? वह बुद्धि अनमोल हो जाती है, क्योंकि अनमोल तत्त्व परमात्मा में जो ठहरी है।

कबीरजी कहते हैं :

भक्ति निसेनी मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय॥

'भक्ति मुक्ति की सीढ़ी है जिस पर संत लोग

दौड़कर चढ़ जाते हैं। जो आलस्य करते हैं वे जन्मों-जन्मों तक पछताते रहते हैं।'

भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कहा राय॥

'भक्ति तो मैदान की गेंद के समान है, जिसे चाहे राजा हो या रंक सब ले जा सकते हैं।'

भक्ति में ऐसा नहीं है कि लड़के को ही मिलेगी या लड़की को ही मिलेगी... धनी को ही मिलेगी या निर्धन को ही मिलेगी... नहीं। भक्ति तो जो चाहे उसे मिल सकती है। राजा जनक को भक्ति मिली, शबरी भीलन को भी भक्ति मिली।

भक्ति पाने के लिए, भगवान को पाने के लिए कुछ बनना नहीं पड़ता। जो कोई कुछ बनना चाहता है कि 'मुझे यह बनना है... वह बनना है...' वह ईश्वर से अलग रहना चाहता है, यह बिल्कुल पक्की बात है। **जो कुछ बनना नहीं चाहता, केवल भगवान को ही चाहता है वही भगवान की भक्ति पाने का अधिकारी होता है।**

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ बिचार।
उदर भरन के कारने, जनम गँवायो सार॥

जिनको भगवान से प्रेम नहीं है और भक्ति कर रहे हैं तो समझो वे पेटपालू हैं।

जीवन का सार गँवाकर केवल पेट भरने के लिए मनुष्य जन्म नहीं मिला है वरन् साररूप परमात्मा को पाने के लिए ही मनुष्य-जन्म हुआ है। सारे दुःखों से सदा के लिए छूटने हेतु ही मनुष्य-जन्म हुआ है। सारे अज्ञान और आकर्षणों का अंत करने के लिए ही मनुष्य-जन्म हुआ है और सारी ऊँचाइयों से भी ऊँचे आत्मानुभव के लिए ही मनुष्य-जन्म हुआ है। यही सार है मनुष्य-जीवन का, लेकिन पेट भरने के लिए अथवा दंभ करके वाहवाही कराने के लिए भक्ति की तो समझो, जीवन का सार गँवा दिया। अंत में कुछ हाथ नहीं लगता...

❊ इस अल्प जीवन में इतना समय ही कहाँ है, जिसे परनिंदा में खर्च किया जाय ?

❊ दूसरों की अवनति या बुराई चाहने से अपनी उन्नति या भलाई नहीं हो सकती।

जीवन का मूल्य

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

यदि आप जप-ध्यान आदि से प्राप्त योग्यताओं को ऐहिक सुविधा या ऐहिक वाहवाही में खर्च कर देते हैं तो समझो, आपने हीरे-मोतियों के बदले में सब्जी लेने का काम किया अथवा तो कंकड़-पत्थर समझकर हीरे-जवाहरात फेंक दिये।

मैंने सुनी है एक कहानी :

एक किसान सुबह-सुबह अपने खेत की रखवाली करने के लिए जा रहा था। रास्ते में उसे एक गठरी मिल गयी। उसने सोचा : 'ये अच्छे कंकड़ हैं। एक-एक कंकड़ चुनना नहीं पड़ेगा। गोफना में डालकर पक्षियों को भगाने में ये काम आ जायेंगे।'

उस मूर्ख किसान ने वह गठरी उठायी और पक्षियों को भगाने के लिए उन चमकते हुए कंकड़ों को गोफना के द्वारा फेंकता गया। सूर्योदय हुआ। कोई जौहरी नदी में स्नान करके वहाँ से गुजरा तो उसने किसान के हाथ में वह चमकता हुआ कंकड़ देखकर पूछा :

''इसको बेचोगे ? १०० रुपये ले लेना।''

किसान : ''१०० रुपये !''

जौहरी : ''अच्छा, ५०० ले ले।''

किसान : ''५०० !''

जौहरी : ''अच्छा, १००० रुपये ले ले।''

किसान : ''१००० रुपये ! इस कंकड़ के १००० रुपये ! मैंने तो ऐसे ढेर सारे कंकड़ फेंक दिये।''

जौहरी : ''भाई ! यह तो हीरा है।''

किसान ने १००० रुपये लेकर हीरा दे दिया।

फिर सिर कूटने लगा कि 'हाय ! बाकी के हीरे मैंने गँवा दिये।'

जौहरी की नज़र में तो वह लाखों रुपयों की चीज थी लेकिन किसान को केवल १००० रुपये मिले। किसान बाकी के हीरों के लिए पश्चात्ताप करने लगा, क्योंकि उसने हीरों को कंकड़ समझकर फेंक दिया था।

हीरों से भी ज्यादा कीमती आपका जीवन है। आपका हर श्वास एक-एक हीरे से कम नहीं है, किंतु संसार के कंकड़ के मूल्य आप अपने श्वासोच्छ्वासरूप हीरों को फेंक रहे हैं। यदि समझ आ जाय तो जैसे किसान पछताया, वैसे आपको भी पश्चात्ताप होगा कि 'इतनी जिंदगी व्यर्थ गयी... चलो, अब बाकी के समय को सार्थक कर लें।'

आध्यात्मिक पहेलियाँ

नन्ही-सी उमर लम्बी-सी डगर, गुरुमंत्र रटन था अधरों पर।
एक बार गुरु के हो गये तो, विश्वास करें क्यों दूसरों पर?
पाँच बरस की नन्ही उमर, फिर भी श्रद्धा है सद्गुरु पर।
नारायण आके देते वर, बिठलाते ऊँचे शिखरों पर।।
सौतेली माँ के गुस्से पर, बंदा निकला था छोड़ के घर।
नारदजी का मस्तक पर कर, बतलाओ ऐसा कौन जिगर?

*

खुद शत्रु बना था बाप, इसने ज्यूँ आता साँप।
भगवद्भक्ति करने न देता, कहता : 'हूँ भगवन् आप'।।
बच्चे को जहर पिलाता, परबत पर से फिकवाता।
हाथी द्वारा कुचलाता, नारायण को बिसराता।।
फिर भी था बच्चा बुलंद, दिल में थी अजीब उमंग।
नारायण की भक्ति न छोड़ी, जप करता रहा अखंड।।
भक्ति रंग लग गया ऐसा, तो बाप की सुनता कैसा?
भक्त की भक्ति देखकर, नरसिंह प्रगटा है ऐसा।।
बतलाओ बच्चों अब तो, कौन भक्त हुआ था ऐसा?

विचार बिंदु

* शुभ संकल्प जल्दी फलीभूत होता है।
* वही हो रहा है, जो होना चाहिए।
* समाहित पुरुष ही पूर्ण आत्मसिद्धि प्राप्त कर सकता है।

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

निर्भय बनो

हर व्यक्ति में भगवान की दिव्य शक्ति छुपी हुई है। इसीलिए किसीको आलसी, प्रमादी, डरपोक और व्यसनी नहीं होना चाहिए वरन् उद्यमी, साहसी और निर्भय होना चाहिए।

एक विद्यार्थी था। वह खेलने के समय दिल लगाकर खेलता और पढ़ने के समय खूब एकाग्रता से पढ़ता। उस विद्यार्थी का नाम था बिले।

स्वभाव से ही साहसी होने के कारण बिले पेड़ पर चढ़ता, कूदता-फाँदता - यह देखकर उसके दादा को बड़ा डर लगता। उसके दादा उससे कहते :

''बिले ! तू कहाँ जाता है ? उस पेड़ पर मत चढ़। उस पर ब्रह्मराक्षस रहता है।''

बिले ने दादा की बात सुन ली और मन-ही-मन हँस पड़ा। खेलते-खेलते थोड़ी देर में वह उसी पेड़ पर चढ़ने लगा।

दूसरे बच्चों ने कहा : ''बिले ! बिले ! उस पर मत चढ़। तेरे दादाजी ने बोला है कि उस पर ब्रह्मराक्षस रहता है। तुझे पकड़ लेगा तो?''

''पकड़नेवाला ही होता तो आज तक पकड़ न लेता ? वह पकड़ेगा तो मैं भी उसको पकड़ूँगा।''

बिले तो बड़ी निर्भयता से पेड़ पर चढ़ गया। वही बिले आगे चलकर स्वामी विवेकानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्होंने विश्व में भारतीय अध्यात्म का, भक्ति और वेदान्त-ज्ञान का प्रसार बाँटा।

सफलता की परीक्षा

विवेकानंद विदेश जा रहे थे। जाने से पूर्व वे माँ शारदा से आज्ञा लेने गये। माँ ने कहा : ''जरा वह चक्कू तो उठाकर देना।''

विवेकानंद चक्कू लाये एवं उसका आगे का हिस्सा अपनी ओर रखकर माँ शारदा को दिया।

माँ ने कहा : ''तुम जाओ। तुम्हारे द्वारा अच्छे काम होंगे।''

''माँ! यह कैसे ?''

''अगर तू धारवाला हिस्सा मेरी ओर करता तो मैं समझ जाती कि ऐसा व्यक्ति स्वयं के अलावा औरों की सुख-शांति की परवाह नहीं करेगा। किंतु तूने चक्कू का आगे का हिस्सा अपनी ओर रखा। इसका अर्थ यह है कि तू खुद कष्ट सहकर भी औरों की मदद करेगा। इसलिए मैं तुझे जाने की आज्ञा दे रही हूँ।''

*

इन्सान की कीमत कपड़ों से नहीं !

स्वामी विवेकानंद अमरिका के एक बगीचे में से गुजर रहे थे। उनको सादे कपड़ों में, बिना किसी हैट के खुले सिर देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उनका मखौल उड़ाने लगे। होएऽ... होएऽऽ... होएऽऽऽ... करते हुए वे स्वामीजी के पीछे लग गये।

स्वामी विवेकानंद आगे-आगे जा रहे थे और मजाक उड़ानेवाले उनके पीछे-पीछे। थोड़ा आगे चलकर विवेकानंदजी तनिक रुके और बोले :

''भाइयो ! आपके देश में इन्सान की कीमत उसके कपड़ों से होती है, किंतु मैं उस देश का निवासी हूँ जहाँ मनुष्य का चरित्र ही विशेष कीमती है। वहाँ कपड़ों की कोई कीमत नहीं है।''

मजाक उड़ानेवाले लज्जित हो उठे।

आप भी अपनी कीमत कपड़ों से मत बनाइये। अपने सच्चरित्र, सदाचार, साहस और सद्गुणों से सज्ज रहिये।

*

सत्य के समीप

जीवन और जगत का सत्य क्या है ? इसका पता यदि तुमने न लगाया हो तो देर न करो। दुनियाभर की व्यर्थ बातें सीखने में आखिर क्यों लगे हो ? सब जगह सुविधा व सुख ढूँढ़ते फिरते हो, अध्यात्म भी तो विषय है; उसमें भी एक बार, कभी भूल से, शंका से या परीक्षा की दृष्टि से ही सही - अपनी असलियत का पता तो लगा लो। फिर जो मर्जी हो, कर लेना, भोग लेना। कर्तव्यों व भोगों का अंत कभी नहीं हुआ है, तुम्हारा अंत अवश्य हो जायेगा। परंतु जीवन का जो सत्य है वह (अध्यात्म) उधर ध्यान देनेमात्र से शीघ्र मिल सकता है। जो नहीं है, केवल आश्वासन है, आशामात्र है, धोखा है, सदा भविष्य में रहता है उसका मिलना संभव ही कहाँ है ? और जो है वह तो अनायास ही मिल जायेगा। उधर ध्यान न देने से ही वह अनमिला-सा हो रहा है और तुम उसके सुख से वंचित ही रहे हो।

क्या बुद्ध, रबिया, रमण महर्षि आदि महापुरुषों को तुम मूर्ख समझते हो और इन वासनावान, दुःखी, उलझे हुए लोगों को बुद्धिमान समझ रहे हो जो उनकी नकल कर रहे हो ? यदि उन महापुरुषों को तुम मूर्ख नहीं समझते हो तो जीवन के सत्य को पहले क्यों नहीं ढूँढ़ लेते ? उन्होंने भी जीवन जिया था, वे सुखी थे और महान हो गये। परिस्थितियों का बहाना मत करो। हर प्रकार की परिस्थितियों से असंग हुआ जा सकता है। सत्य को देखने में परिस्थिति रोक नहीं सकती। केवल अपने पर कृपा करो। जिसने भी अपने-आप पर कृपा की, वह सत्य के समीप तो पहुँच ही गया।

एकादशी माहात्म्य

[पुत्रदा एकादशी : १४ जनवरी २००३]

युधिष्ठिर बोले : श्रीकृष्ण ! कृपा करके पौष मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का माहात्म्य बतलाइये । उसका नाम क्या है ? उसे करने की विधि क्या है ? उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है ?

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : राजन् ! पौष मास के शुक्लपक्ष की जो एकादशी है, उसका नाम 'पुत्रदा' है ।

'पुत्रदा एकादशी' को नाम-मंत्रों का उच्चारण करके फलों के द्वारा श्रीहरि का पूजन करे । नारियल के फल, सुपारी, बिजौरा नींबू, जमीरा नींबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषतः आम के फलों से देवदेवेश्वर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए । इसी प्रकार धूप-दीप से भी भगवान की अर्चना करे ।

'पुत्रदा एकादशी' को विशेष रूप से दीप-दान करने का विधान है । रात को वैष्णव पुरुषों के साथ जागरण करना चाहिए । जागरण करनेवाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्षों तक तपस्या करने से भी नहीं मिलता । यह सब पापों को हरनेवाली उत्तम तिथि है ।

चराचर जगतसहित समस्त त्रिलोकी में इससे बढ़कर दूसरी कोई तिथि नहीं है । समस्त कामनाओं तथा सिद्धियों के दाता भगवान नारायण इस तिथि के अधिदेवता हैं ।

पूर्वकाल की बात है, भद्रावतीपुरी में राजा सुकेतुमान राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम चम्पा था । राजा को बहुत समय तक कोई वंशधर पुत्र प्राप्त नहीं हुआ । इसलिए दोनों पति-पत्नी सदा चिंता और शोक में डूबे रहते थे । राजा के पितर उनके दिये हुए जल को शोकोच्छ्वास से गरम करके पीते थे । 'राजा के बाद और कोई ऐसा दिखाई नहीं देता, जो हम लोगों का तर्पण करेगा...' यह सोच-सोचकर पितर दुःखी रहते थे ।

एक दिन राजा घोड़े पर सवार हो गहन वन में चले गये । पुरोहित आदि किसीको भी इस बात का पता न था । मृग और पक्षियों से सेवित उस सघन वन में राजा भ्रमण करने लगे । मार्ग में कहीं सियार की बोली सुनाई पड़ती थी तो कहीं उल्लुओं की । जहाँ-तहाँ भालू और मृग दृष्टिगोचर हो रहे थे । इस प्रकार घूम-घूमकर राजा वन की शोभा देख रहे थे, इतने में दोपहर हो गयी । राजा को भूख और प्यास सताने लगी । वे जल की खोज में इधर-उधर भटकने लगे । किसी पुण्य के प्रभाव से उन्हें एक उत्तम सरोवर दिखाई दिया, जिसके समीप मुनियों के बहुत-से आश्रम थे । शोभाशाली नरेश ने उन आश्रमों की ओर देखा । उस समय शुभ की सूचना देनेवाले शकुन होने लगे । राजा का दाहिना नेत्र और दाहिना हाथ फड़कने लगा, जो उत्तम फल की सूचना दे रहा था । सरोवर के तट पर बहुत-से मुनि वेदपाठ कर रहे थे । उन्हें देखकर राजा को बड़ा हर्ष हुआ । वे घोड़े से उतरकर मुनियों के सामने खड़े हो गये और पृथक्-पृथक् उन सबकी वन्दना करने लगे । वे मुनि उत्तम व्रत का पालन करनेवाले थे । जब राजा ने हाथ जोड़कर बारंबार दण्डवत् किया, तब मुनि बोले :

'राजन् ! हम लोग तुम पर प्रसन्न हैं ।'

राजा बोले : आप लोग कौन हैं ? आपके नाम क्या हैं तथा आप लोग यहाँ किसलिए एकत्रित हुए हैं ? कृपया यह सब बताइये ।

मुनि बोले : राजन् ! हम लोग विश्वेदेव हैं । यहाँ स्नान के लिए आये हैं । माघ मास निकट आ गया है। आज से पाँचवें दिन माघ का स्नान

आरम्भ हो जायेगा। आज ही 'पुत्रदा' नाम की एकादशी है, जो व्रत करनेवाले मनुष्यों को पुत्र देती है।

राजा ने कहा : विश्वेदेवगण ! यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र दीजिये।

मुनि बोले : राजन् ! आज 'पुत्रदा' नाम की एकादशी है। इसका व्रत बहुत विख्यात है। तुम आज इस उत्तम व्रत का पालन करो। महाराज ! भगवान केशव के प्रसाद से तुम्हें पुत्र अवश्य प्राप्त होगा।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! इस प्रकार उन मुनियों के कहने से राजा ने उक्त उत्तम व्रत का पालन किया। महर्षियों के उपदेश के अनुसार विधिपूर्वक 'पुत्रदा एकादशी' का अनुष्ठान किया। फिर द्वादशी को पारण करके मुनियों के चरणों में बारंबार मस्तक झुकाकर राजा अपने घर आये। तदनन्तर रानी ने गर्भधारण किया। प्रसवकाल आने पर पुण्यकर्मा राजा को तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने अपने गुणों से पिता को संतुष्ट कर दिया। वह प्रजा का पालक हुआ।

इसलिए राजन् ! 'पुत्रदा' का उत्तम व्रत अवश्य करना चाहिए। मैंने लोगों के हित के लिए तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर 'पुत्रदा एकादशी' का व्रत करते हैं, वे इस लोक में पुत्र पाकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गगामी होते हैं। इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है।

भोग को सदैव रोग समझो

विषय-विकारों में डूबकर सुख-शांति की अभिलाषा कर रहे हो। शोक तुम्हारे ऐसे जीने पर !

स्मरण रखो कि तुम्हें धर्मराज के समक्ष आँखें नीची करनी पड़ेंगी। कबीर साहब ने फरमाया है :

धर्मराय जब लेखा माँगे, क्या मुख ले के जायेगा ?
कहत कबीर सुनो रे साधो, साध संगत तर जायेगा॥

भूलो नहीं कि वहाँ कर्म का प्रत्येक अंश प्रकट होगा, प्रत्येक अपने कामों के लिए उत्तरदायी रहेगा। तुम्हें वहाँ अपना सिर नीचा करना पड़ेगा। अतः सोचो, अभी भी समय गया नहीं है। अपने अंतःकरण में अपने प्रियतम को देखो। मनुष्य-देह वापस नहीं मिलेगी।

अतः आज अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लो कि मैं सत्पुरुषों का संग करके, सत्शास्त्रों का अध्ययन करके, विवेक एवं वैराग्य का आश्रय लेकर, किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष की शरण जाकर तथा अपने कर्तव्यों का पालन करके इस मनुष्य-योनि में मोक्ष प्राप्त करूँगा, जीवन को सफल बनाऊँगा।

- आश्रम की आगामी पुस्तक 'सहज वाणी' से

आत्महत्या का पाप

(१) नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत् । वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेद-करास्तथा ॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः । (पाराशर स्मृति : ४.३,४)

आत्महत्या करनेवाले प्राणी की अशुद्धि (अशौच) न मानें, पाश का छेदन न करें, आँसू भी न गिरायें, अग्नि संस्कार, अस्थि-संचय और जलदान (श्राद्ध-तर्पण) भी न करें। ऐसे प्राणी के शरीर को ले जानेवाले तथा दाह संस्कार करनेवाले तप्तकृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध होते हैं।

(२) अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदि वा भयात् । उद्‌बध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते ॥ पूयशोणितसम्पूर्णे त्वन्धे तमसि मज्जति । षष्टिवर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ॥ (पाराशर स्मृति : ४.१,२)

आत्महत्या करनेवाला मनुष्य ६० हजार वर्षों तक अंधतामिस्र नरक में निवास करता है।

(३) हत्वाऽऽत्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं वधाद् भ्रातुर्नरकं चातिघोरम् ॥ (महाभारत, कर्ण पर्व : ७०.२८)

भाई का वध करने से जिस अत्यंत घोर नरक की प्राप्ति होती है, उससे भी भयानक नरक स्वयं ही अपनी हत्या करने से प्राप्त होता है।

(४) अन्धन्तमोविशेयुस्ते ये चैवात्महनो जनाः । भुक्त्वा निरयसाहस्रं ते च स्युर्ग्रामसूकराः ॥ आत्मघातो न कर्तव्यस्तस्मात् क्वापि विपश्चिता । इहापि च परत्रापि न शुभान्यात्मघातिनाम् ॥ (स्कन्द पुराण, काशी. पू. : १२.१२,१३)

आत्महत्यारे घोर नरकों में जाते हैं और हजारों नरक-यातनाएँ भोगकर फिर देहाती सूअरों की योनि में जन्म लेते हैं। इसलिए समझदार मनुष्य को कभी भूलकर भी आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। आत्महत्यारों का न तो इस लोक में और न परलोक में ही कल्याण होता है।

(५) जलाग्न्युद्‌बन्धनभ्रष्टा प्रव्रज्यानशनच्युताः । विषप्रपतनप्रायशस्त्रघातच्युताश्च ये ॥ सर्वे ते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः । चान्द्रायणेन शुध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥ (यम स्मृति : २,३)

यदि आत्महत्या का प्रयत्न करनेवाला मनुष्य किसी प्रकार बच जाता है अथवा जो संन्यास लेकर उसे त्याग देता है तो वे दोनों 'प्रत्यवसित' कहलाते हैं। ऐसे मनुष्य सभी के द्वारा बहिष्कृत होते हैं। उनकी शुद्धि चान्द्रायण व्रत अथवा दो तप्तकृच्छ्र व्रत करने से होती है।

(६) रज्जुशस्त्रविषैर्वापि कामक्रोधवशेन यः । घातयेत्स्वयमात्मानं स्त्री वा पापेन मोहिता ॥ रज्जुना राजमार्गे तां चण्डालेनापकर्षयेत् । न श्मशानविधिस्तेषां न सम्बन्धिक्रियास्तथा ॥ बन्धुस्तेषां तु यः कुर्यात्प्रेतकार्यक्रियाविधिम् । तद्‌गतिं स चरेत्पश्चात्स्वजनाद्वा प्रमुच्यते ॥ (कौटिल्य अर्थशास्त्र : ४.७)

जो पुरुष या स्त्री काम या क्रोध के वशीभूत होकर, फाँसी लगाकर, शस्त्र के द्वारा या विष लेकर आत्महत्या करे उसका शव चाण्डाल रस्सी से बाँधकर राजमार्ग से घसीटता हुआ ले जाय। ऐसे व्यक्तियों के लिए दाह संस्कार और तिलांजलि आदि संस्कार वर्जित हैं। ऐसे व्यक्ति का कोई बंधु दाहादि संस्कार (प्रेतकार्य) करता है तो मरने के बाद उसको भी वही गति प्राप्त होती है और इस लोक में उसे जातिच्युत कर दिया जाता है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १२३वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जनवरी २००३ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

सर्दी के मौसम में पुष्टिदायक अश्वगंधा पाक

अश्वगंधा एक बलवर्धक व पुष्टिदायक श्रेष्ठ रसायन है। यह मधुर व स्निग्ध होने के कारण वात का शमन एवं रस-रक्तादि सप्त धातुओं का पोषण करनेवाला है। सर्दियों में जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। तब अश्वगंधा से बने हुए पाक का सेवन करने से सम्पूर्ण वर्ष तक शरीर में शक्ति, स्फूर्ति व ताजगी बनी रहती है।

बनाने की विधि : (१) ४८० ग्राम अश्वगंधा चूर्ण को ६ लिटर गाय के दूध में, दूध गाढ़ा होने तक पकायें। (२) दालचिनी (तज), तेजपत्ता, नागकेशर और इलायची का चूर्ण प्रत्येक १५-१५ ग्राम मात्रा में ले। (३) जायफल, केशर, वंशलोचन, मोचरस, जटामांसी, चंदन, खैरसार (कत्था), जावित्री (जावंत्री), पीपरामूल, लौंग, कंकोल, भिलावा की मींगी, अखरोट की गिरी, सिंघाड़ा, गोखरू का महीन चूर्ण प्रत्येक ७.५-७.५ ग्राम मात्रा में लें। (४) रस सिंदूर, अभ्रकभस्म, नागभस्म, बंगभस्म, लौहभस्म प्रत्येक ७.५-७.५ ग्राम मात्रा में ले। (५) उपरोक्त सभी चूर्ण व भस्म एकत्र मिलाकर अश्वगंधा से सिद्ध किये दूध में मिला दें। (६) ३ किलो चिनी अथवा मिश्री की चाशनी बना लें। जब चाशनी बनकर तैयार हो जाय तब उसमें से १-२ बूँद निकालकर उँगली से देखें, लच्छेदार तार छूटने लगे तब इस चाशनी में उपरोक्त मिश्रण मिला दें। कलछी से खूब घोटें, जिससे सब अच्छी तरह से मिल जाय। इस समय पाक के नीचे तेज अग्नि न हो। सब औषधियाँ अच्छी तरह से मिल जाने के बाद अग्नि से उतार दें।

परीक्षण : पूर्वोक्त प्रकार से औषधियाँ डालकर जब पाक तैयार हो जाता है, तब वह कलछी से उठाने पर तार-सा बँधकर उठता है। थोड़ा ठंडा करके १-२ बूँद पानी में डालने से उसमें डूबकर एक जगह बैठ जाता है, फैलता नहीं। ठंडा होने पर उँगली से दबाने पर उसमें उँगलियों की रेखाओं के निशान बन जाते हैं।

पाक को थाली में रखकर ठंडा करें। ठंडा होने पर चीनी मिट्टी या काँच के बर्तन में भरकर रखें।

मात्रा व अनुपान : १० से १५ ग्राम सुबह शहद अथवा गाय के दूध के साथ लें।

गुण और उपयोग : यह पाक शक्तिवर्धक, वीर्यवर्धक, स्नायु व मांसपेशियों को ताकत देनेवाला, कद बढ़ानेवाला एक पौष्टिक रसायन है। धातु की कमजोरी, शारीरिक-मानसिक कमजोरी आदि के लिए उत्तम औषधि है। इसमें कैल्शियम, लौह तथा जीवनसत्त्व (विटामिन्स) भी प्रचुर मात्रा में होते हैं।

❊ अश्वगंधा अत्यंत वाजीकर अर्थात् शुक्रधातु की त्वरित वृद्धि करनेवाला रसायन है। इसके सेवन से शुक्राणुओं की वृद्धि होती है एवं वीर्यदोष दूर होते हैं। धातु की कमजोरी, स्वप्नदोष, पेशाब के साथ धातु जाना आदि विकारों में इसका प्रयोग बहुत ही लाभदायी है।

❊ यह पाक अपने मधुर व स्निग्ध गुणों से रस-रक्तादि सप्तधातुओं की वृद्धि करता है। अतः मांसपेशियों की कमजोरी, रोगों के बाद आनेवाला दौर्बल्य तथा कुपोषण के कारण आनेवाली कृशता आदि में विशेष उपयुक्त है। इससे विशेषतः मांस व शुक्रधातु की वृद्धि होती है। अतः यह राजयक्ष्मा (क्षयरोग) में भी लाभदायी है। क्षयरोग में अश्वगंधा पाक के साथ 'सुवर्ण मालती' गोली का प्रयोग करें। कम दामों में शुद्ध 'सुवर्ण मालती' व 'अश्वगंधा चूर्ण' आश्रम के सभी उपचार केन्द्रों व स्टालों पर उपलब्ध है।

❊ जब धातुओं का क्षय होने से वात का प्रकोप होकर शरीर में दर्द होता है, तब यह दवा बहुत लाभ करती है। इसका असर वातवाहिनी नाड़ी पर विशेष होता है। अगर वायु की विशेष तकलीफ है तो इसके साथ 'महायोगराज गुगल' गोली का प्रयोग करें।

❊ इसके सेवन से नींद भी अच्छी आती है। यह वातशामक तथा रसायन होने के कारण विस्मृति, यादशक्ति की कमी, उन्माद, मानसिक अवसाद (डिप्रेशन) आदि मनोविकारों में भी लाभदायी है। दूध के साथ सेवन करने से शरीर में लाल रक्तकणों की वृद्धि होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। शरीर की कांति बढ़ती है। शरीर में शक्ति आती है। सर्दियों के दिनों में इसका लाभ अवश्य लें। *- धन्वंतरि आरोग्य केन्द्र, अमदावाद।*

जड़ीबूटियों की आपूर्ति हेतु सूचना

भारतभर के विविध संत श्री आसारामजी आश्रमों में लाखों लोगों को कुशल वैद्यों द्वारा चिकित्सा-सेवा और आश्रम के पवित्र वातावरण में जड़ीबूटियों से बनायी गयी औषधियाँ रियायती दरों में उपलब्ध करायी जाती हैं।

इस हेतु ३०० प्रकार की विविध जड़ीबूटियाँ बड़े पैमाने पर 'संत श्री आसारामजी औषध निर्माण' द्वारा खरीदी जा रही हैं। अतः भारतभर के जंगलों के ठेकेदार और जड़ीबूटियों के थोक व्यापारी नीचे के पतों पर सम्पर्क करें अथवा नजदीकी 'श्री योग वेदान्त सेवा समिति' द्वारा आश्रम का सम्पर्क करें।

१. श्री रामभाई, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५. फोन : (०७९) ७५०५०१६. फैक्स : ७५०५०१२.

e-mail : ashramindia@ashram.org

२. श्री दिनेशभाई, संत श्री आसारामजी आश्रम, वन्दे मातरम् मार्ग, करोल बाग के पास, नई दिल्ली-६०. फोन : (०११) २५८१७२३८.

फैक्स : २५८११७३३.

** ऋषि प्रसाद पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि ऋषि प्रसाद पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्य क्रमांक/रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में यह नहीं लिखा होगा, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।*

** नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।*

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

गुरुमंत्र का प्रभाव

परम पूज्य बापूजी के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

मैंने पूज्यश्री से २५ जुलाई को दीक्षा ली थी। तब से आज तक बहुत से अनुभव हुए, जिससे गुरुदेव के प्रति मन में श्रद्धा बढ़ती ही गयी। हाल ही में हुआ एक अनुभव लिख रहा हूँ।

हमारे शहर (सोलापुर) में दि. ११ अक्टूबर को जातीय दंगे भड़क उठे। अमरिकन ईसाई धर्मगुरु (पोप) के वक्तव्य के विरोध में मुसलिमों ने आक्रामक रवैया अपनाते हुए कई दुकानों को आग लगा दी। इसी दौरान उन लोगों ने मेरी दुकान को भी आग लगा दी। मैं ऊपर की मंजिल पर स्थित अपने घर में था। शुरू में घर के लोग थोड़ा घबरा गये थे। आक्रमणकारियों ने घर पर भी काफी पथराव किया, ताकि हम आग बुझाने नीचे न आयें। कुछ ही समय में दुकान से काफी धुआँ आना शुरू हो गया। इसी दौरान मैंने बापूजी के फोटो के सामने बैठ गुरुमंत्र का जप शुरू कर दिया।

कुछ देर बाद हम लोगों ने नीचे आकर दुकान खोली तो देखा कि दुकान में लगी आग अपने-आप बुझ गयी थी, सिर्फ धुआँ ही बचा था। कुछ सामान छोड़कर सारी दुकान सही-सलामत थी।

बस, यह सारा कमाल बापूजी के आशीर्वाद का था और हम सब घर के लोग भी मरते-मरते बच गये। बापूजी भगवान का साक्षात् रूप हैं। बापूजी को कोटि-कोटि प्रणाम... - *विकास शंकरसा पवार*

६६, शनिवार पेठ, सोलापुर (महाराष्ट्र).
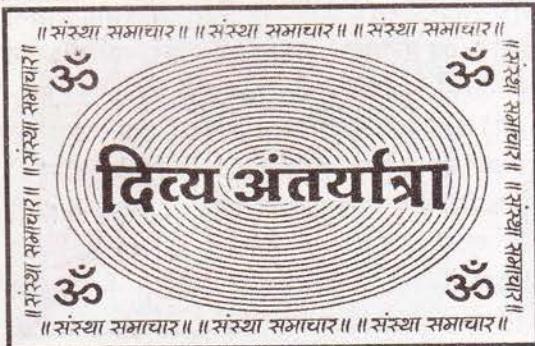
औद्योगिक नगरी अमदावाद के कोलाहल से दूर एकांत, शांत, प्रदूषण से रहित पावन स्थल पर २५ नवम्बर से १ दिसम्बर २००२ तक चुने हुए साधकों के लिए ७ दिवसीय 'विशेष साधना शिविर' का आयोजन हुआ। इस शिविर में साधकों ने गूढ़ आध्यात्मिक सत्संग-श्रवण के साथ ध्यान की गहराइयों का भी अनुभव किया। इस दौरान प्रतिदिन शाम को आश्रम में भी पूज्यश्री के पावन वचनामृत का पान करने का अवसर सौभाग्यशाली साधकों को मिला। आत्मानुभव से सम्पन्न सत्संग-गंगा हृदय को शीतलता से व बुद्धि को बुद्धिदाता के ज्ञान से भरनेवाली थी। प्रस्तुत हैं कुछ झलकियाँ :

२६ नवम्बर : वासना के आवेग में मानव अपना पूरा जीवन खो देता है, किंतु अगर विवेक करे तो परमात्मा को पाने में भी सफल हो सकता है। इसी बात पर प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी ने आज कहा :

''अगर विवेक चला गया और वासना के अनुसार करने लगे तो इससे बढ़कर और क्या हानि हो सकती है ? १०-२० लाख रुपये चले जायें तो कोई बड़ी बात नहीं। अरे, २० करोड़ रुपये भी किसी काम के नहीं... करोड़ों हैं लोगों के पास फिर भी दुःखी हैं। वासना को महत्त्व दिया तो समझो, आपने दुःखों का कारखाना चालू कर दिया है और विवेक को महत्त्व दिया तो दुःखों का कारखाना बंद होने के और परम प्रकाशमय सुखमय सामर्थ्य प्रकट होने के रास्ते आप चल पड़े हो।''

२७ नवम्बर : साधारण-से-साधारण मनुष्य को जीवन के उच्च आदर्श सिखाने हों तो सरल-से-सरल माध्यम है महापुरुषों के प्रेरणादायक जीवन-प्रसंग !

उड़िया बाबा के प्रेरक जीवन-प्रसंगों पर प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी ने कहा कि ईश्वरीय पथ के पथिक का मार्ग बड़ा निराला होता है :

तिन सबसे नाता तोड़ा है। विष विषयों से मन मोड़ा है॥
इक अपना प्रिय उर धारा है। हरि आशिक का मग न्यारा है॥

शरीर, वाणी, अंतःकरण और धन की शुद्धि का उपाय बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''शरीर की शुद्धि हिंसा, व्यभिचार के त्याग से होती है। वाणी की शुद्धि भगवन्नाम-जप से होती है। अंतःकरण शुद्ध होता है भगवान के ध्यान से और धन की शुद्धि होती है दान से।''

२८ नवम्बर : शाम का समय... साधकों द्वारा निर्मित पवित्र व शुद्ध गूगल धूप से वातावरण में सात्त्विकता की लहर फैली हुई है। १० प्राणायाम कराने के बाद पूज्यश्री साधकों को ध्यान की गहराइयों में ले जाते हुए कह रहे हैं : ''जैसे घड़े बनते-बिगड़ते हैं फिर भी आकाश ज्यों-का-त्यों है, ऐसे ही यह शरीर और इसके सम्बन्ध बनते-बिगड़ते हैं, परंतु इनका साक्षी 'मैं' अबदल है। अपने सम्बन्धों में हम फँसे हैं, किंतु इसको जाननेवाला मैं हूँ। मैं कौन हूँ ? खोजो। अगर उसमें ३ मिनट टिक गये तो पार हो गये...

वैसे तो सदा टिके हुए हैं, एक सेकंड भी उससे अलग नहीं हुए। ऐसा नहीं है कि वह कहीं और है और आप जाकर उसमें टिको, लेकिन मन जानता नहीं इसलिए भटकता है।''

२९ नवम्बर : आज की शाम कुछ निराली ही थी। पवित्र-शांत वातावरण में

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

का धीमी गति से उच्चारण वातावरण को हरिमय बनाता जा रहा था... सब ध्यान की गहराइयों में खोते जा रहे थे...

वास्तविक सुख पर प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''हकीकत में कीड़ी, मकोड़ा, बिल्ली, चूहा, नेता, गुंडा, बदमाश, चोर, डाकू, साधु, असाधु - सारे ब्रह्माण्ड की एक ही माँग है - सुख। चोरी करके भी आदमी सुख ही तो चाहता है, क्योंकि सबका उद्गम-स्थान सुखस्वरूप आत्मा है। उस आत्मा को जान लें तो कल्याण हो जाय।

सुख की माँग है तो सुख भी स्वाभाविक है, केवल उलटे संस्कार हटाने हैं। जप-ध्यान में लगे रहें। सत्संग, सेवा, जप और ध्यान करें तो सुखस्वरूप को पाना आसान हो जाय।''

३० नवम्बर : 'मानव अपने भाग्य का आप विधाता है' अर्थात् 'अपना सुख अपने हाथ' इस सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''आप चाहो ऐसी दुनिया हो जाय यह संभव नहीं है। किंतु दुनिया

चाहे कैसी भी हो फिर भी आपको दबोच न सके यह संभव है । सारी पृथ्वी को ढँकना आपके वश की बात नहीं है, किंतु अपने पैरों को ढँका तो आपका प्रयोजन पूरा हो जायेगा और सारी पृथ्वी को ढँकने की कोई जरूरत भी नहीं रहेगी । यह आपके वश की बात है ।

आप गुरुकृपा से, साधना से, सत्संग से, तत्त्वविचार से अपने-आपको 'झंझटप्रूफ' बना लो । बस, फिर मौत भी आ जाय तो कोई बात नहीं । आप मौत के भी साक्षी हो जाओगे ।''

१ दिसम्बर : 'ईश्वरीय विधान का आदर ही सर्व सुखों की कुंजी है और उसका अनादर ही सर्व दुःख-प्रदायक है ।' शास्त्रों के निचोड़रूप इस सुन्दर सिद्धांत को जीवन में उतारना अत्यंत कल्याणकारी बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''आप जितना-जितना ईश्वर के साथ जुड़ते हैं, ईश्वर के नाते ही कर्म करते हैं, ईश्वर में विश्रांति पाते हैं उतना-उतना आपका आत्मवैभव प्रकट होता है ।

ईश्वर का वैभव और जीवात्मा का वैभव एक-दूसरे के साथ तालबद्ध हो जाता है तो जीव मुक्त हो जाता है । किंतु जीव जब ईश्वर के विपरीत खड़ा हो जाता है तो दुःख-ही-दुःख पाता है ।''

जिन्होंने भारत के कोने-कोने तक सत्संग-कार्यक्रमों की अविराम शृंखलाओं द्वारा तथा सर्वमंगलकारी सेवा-प्रवृत्तियों द्वारा '**सबका मंगल, सबका भला ।**' इस सर्वहितकारी सिद्धांत को पहुँचाया है, जन-जन की जीवनधारा में आनेवाली विविध कठिनाइयों का अनुभव कर फिर जिन्होंने आत्मपद पाया है, ऐसे आत्मनिष्ठ पूज्य बापूजी का आदर-पूजन सभी धर्मों, जातियों, पंथों, संप्रदायों, राजकीय पक्षों के लोग करते हैं और उनके सत्संग-सान्निध्य में आकर आपसी विरोध को उतार फेंक राष्ट्रीय एकात्मता ही नहीं, हृदय की ईश्वरीय एकात्मता का भी पाठ पढ़ते हैं । सन्मार्ग पर चलने का बल भी पाते हैं और अपने दैनिक व्यवहार-कर्म को ही कर्मयोग में परिणत करने की कला भी । इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव सभी भारतवासियों को पूज्य बापूजी के सत्संग-कार्यक्रमों में देखने को मिलता है ।

हम सब धनभागी हैं कि इस युग में भी इतनी आसानी से ईश्वरप्राप्त महापुरुष का प्रत्यक्ष दर्शन व सत्संग प्राप्त कर रहे हैं ।

सूरत (गुज.) : १९ से २२ दिसम्बर तक सूरत आश्रम के विशाल प्रांगण में १५ वर्ष से अधिक उम्र के छात्र-छात्राओं एवं बड़ों की 'समन्वित ध्यान योग साधना शिविर' का आयोजन हुआ । यह पहला सफल प्रयोग था जिसमें विद्यार्थियों के साथ अभिभावकों (माता-पिता) व अध्यापकों को भी प्रवेश दिया गया । ब्रह्मनिष्ठ पूज्यश्री की अनुभव-सम्पन्न वाणी व यौगिक प्रयोगों से संस्कारित होते नौनिहालों को देखकर वे गद्गद हो जाते थे । पूज्यश्री की नूरानी निगाहों से जब होती थी शक्तिपात-वर्षा तो बच्चे, वृद्ध, जवान सभी मस्त हो जाते थे प्रभु-ध्यान में । साधक-हृदय अष्टसात्त्विक भावों में विचरण करने लगता था । **ऐसी ही समन्वित शिविर १४ से १९ जनवरी तक अमदावाद आश्रम में अयोजित की गयी है ।**

उल्हासनगर (महा.) : २२ दिसम्बर को सूरत आश्रम में 'समन्वित ध्यान योग शिविर' की पूर्णाहुति कर पूज्य बापूजी उल्हासनगर पहुँचे । २२ दिसम्बर की शाम से ही यहाँ सत्संग-प्रवचन का शुभारंभ हुआ । पहले ही दिन श्रद्धालुओं की अपार भीड़ ने विशाल सत्संग पंडाल को नन्हा कर दिया । उल्हासनगर के इस अभूतपूर्व सत्संग-समारोह को देखने से यह लगता ही नहीं था कि हम इस घोर कलिकाल में रह रहे हैं । चारों ओर वैकुण्ठ उमड़ पड़ा था ।

मानव चाहे कितनी ही भौतिक उन्नति कर ले, यदि सच्चा सुख, सच्ची शांति पानी हो तो उसे अध्यात्म जगत में प्रवेश करना ही होगा, संतों की शरण में जाना ही होगा । यहाँ की विशाल जनमेदनी ने अपनी विशाल उपस्थिति से इस सत्य को साकार कर दिखाया ।

पूज्यश्री के करकमलों से श्रीमद्भगवद्गीता (मराठी) का विमोचन हुआ तथा २५ दिसम्बर की शाम को सत्संग के पश्चात् बदलापुर (महा.) आश्रम का उद्घाटन हुआ ।

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

(१) भेटासी (गुज.) : गीता भागवत सत्संग, १० से १२ जनवरी २००३. संत श्री आसारामजी आश्रम, भेटासी, जि. आणंद । फोन : (०२६९६) २८४७८७.

(२) अमदावाद : उत्तरायण ध्यान योग साधना शिविर, १४ से १९ जनवरी २००३, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती । (१५ वर्ष से अधिक आयुवाले विद्यार्थी भी भाग ले सकते हैं ।) फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.

पूर्णिमा दर्शन : १८ जनवरी २००३

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED NO. GAMC/1132/2003 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 236. REGD. NO. TECH/47 833/MBI/2003 POSTING FROM MUMBAI 9-10 OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2003 WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. U(C) 232/2003 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.

सूर्य तुम्हें प्रेरणा है देता, पौरुष और प्रकाश की । जिस तेज से वह है चमकता, वह आत्मतेज हो तुम्ही ॥ संत शरण में पहुँचे हो, पुण्योदय हुआ है जभी । पंडाल नन्हें पड रहे, आत्मरस का कमाल यही ॥
पद-प्रतिष्ठा, मान-सुविधा, सब यहाँ तुच्छ हो रही । भगवद्रस ही सार है, समझ यह दृढ हो रही ॥ आस्तिकता के युग का फिर से आगमन हो रहा है, यह शुभ समाचार दे रहा है सूरत आश्रम में उमड़ा हरिभक्तों का कुंभ।